खेत से
थाली के बीच

औरतें और फूड प्रोसेसिंग

संपादन :
दिव्या पांडे , मीरा सवारा

हिंदी रूपांतर :
चयनिका , स्वातीजा

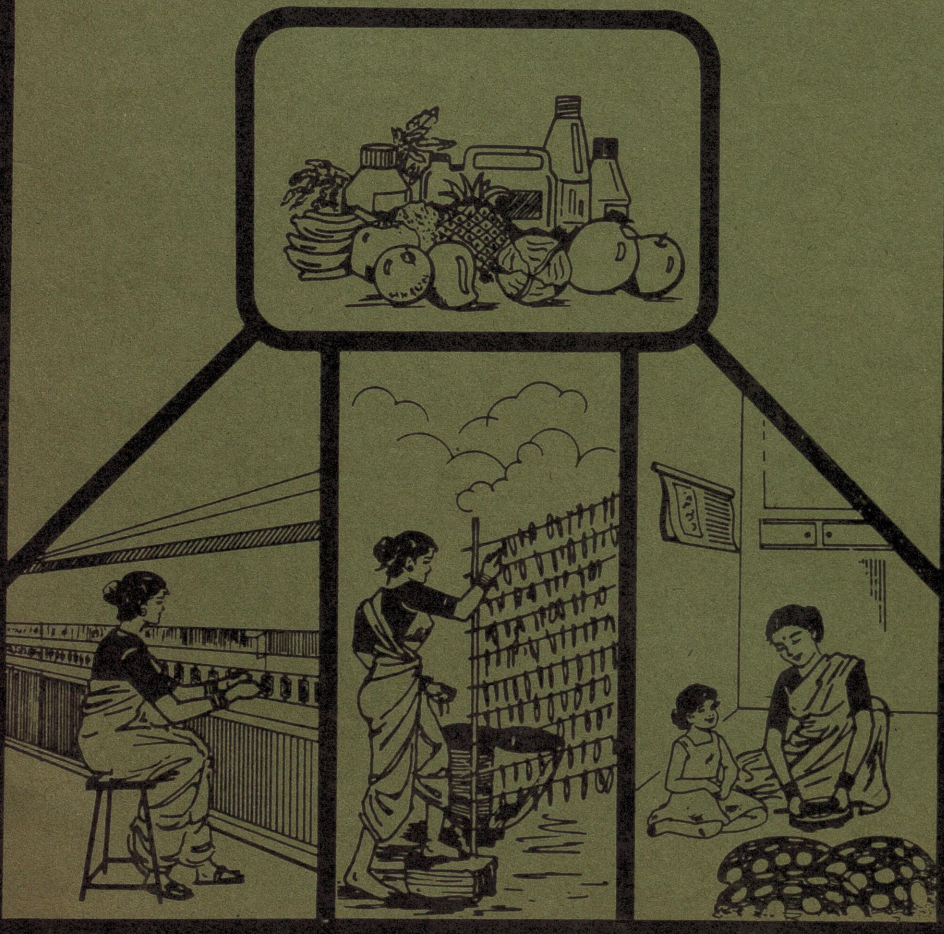

Research Centre for Women Studies
S.N.D.T. University, Bombay

खेत से
थाली के बीच

औरतें और फूड प्रोसेसिंग

संपादन :
दिव्या पांडे , मीरा सवारा

हिंदी रूपांतर :
चयनिका , स्वातीजा

With Best Compliments
RESEARCH CENTRE FOR WOMEN'S STUDIES
S.N.D.T. WOMEN'S UNIVERSITY
Vithaldas Vidyavihar, Santacruz [West],
BOMBAY-400 049.

Research Centre for Women Studies
S.N.D.T. University, Bombay

अनुक्रम

	भूमिका	चयनिका शाह और स्वातीजा मनोरमा	
पृष्ठभूमि			
1.	*फूड प्रोसेसिंग और औरतें -- उभरते मुद्दे*	दिव्या पांडे और मीरा सवारा	*7*
फूड प्रोसेसिंग में मशीनीकरण और औरतें			
2.	*फूड प्रोसेसिंग व बंगाल का ऐतिहासिक अनुभव*	मुकुल मुखर्जी	*25*
3.	*मशीनीकरण का धान मिलों में कार्यरत औरतों पर प्रभाव*	रूबी ओझा	*26*
4.	*फूड प्रोसेसिंग के निजि और सार्वजनिक संगठित क्षेत्रों में औरतों का रोज़गार*	दिव्या पांडे	*28*
5.	*फूड प्रोसेसिंग में टेक्नॉलॉजी का स्तर और औरतों के रोज़गार पर प्रभाव*	मीरा सवारा	*29*
केस स्टडीज़			
6.	*फूड प्रोसेसिंग में औरतें -- बिना मूल्य काम*	नीरा देसाई	
7.	*फूड प्रोसेसिंग में औरतें*	सुरिंदर जेतली	*32*
8.	*खान-पान उद्योग में रोज़गार की स्थिति*	ललिता अय्यर	*34*
9.	*फूड प्रोसेसिंग उद्योग और स्व-रोज़गार प्राप्त औरतें*	ललिता कृष्णस्वामी	*35*

10.	*बड़ी कंपनियां और फूड प्रोसेसिंग -- औरतों के लिये संभावनाएं और दिक्कतें*	जे. एन. मेहरोत्रा	36

पोषण और ग्राहक की दृष्टिसे फूड प्रोसेसिंग

11.	*फूड प्रोसेसिंग का पोषण पर असर*	पी. वी. सुखात्मे	38
12.	*फूड प्रोसेसिंग और पोषण*	जी. सुभलक्ष्मी	40
13.	*फूड प्रोसेसिंग उद्योग और उपभोक्ता*	उमा पटेल	41

संगठन कार्य और संगठन

14.	*अन्नपूर्णा महिला मंडल --नेतृत्व का विकास*	वृंदा पै	43
15.	*ज्योती संघ*	सरला शाह	44
16.	*शहरी अनौपचारिक फूड प्रोसेसिंग उद्योग में स्त्रियों की स्थिति --वर्तमान और भविष्य*	एस. के. जी. सुंदरम	45
17.	*फूड प्रोसेसिंग उद्योग में औरतों को संगठित करने के अनुभव*	शारदा साठे	46

सरकारी योजनाएं और नीतियां

18.	*सरकारी योजनाएं और नीतियां*	इ. आर. रति	48
19.	CFTRI *- फूड प्रोसेसिंग और औरतों के लिए संभावनाएं*	एस. हरीप्रसाद और पी. एस. बालकृष्णन	50
20.	*उभरता हुआ फूड प्रोसेसिंग उद्योग -- औरतों के लिए संकेत*	मैथिलि रवि	51
21.	*खादी ग्रामोद्योग आयोग के अंतर्गत फल और सब्ज़ी प्रोसेसिंग संरक्षण उद्योग*	यू. हरिगोपाल	52
22.	*स्त्रियों का आहार व फूड प्रोसेसिंग -- जनता का हस्तक्षेप*	एन. वी. मेरी	53
	कार्यशाला के सुझाव		55

भूमिका

चयनिका शाह और स्वातीजा मनोरमा

यह पुस्तिका 'विमेन एन्ड फूड प्रोसेसिंग' विषय पर आयोजित एक कार्यशाला की अंग्रेज़ी रिपोर्ट के आधार पर बनाई गई है। इस कार्यशाला का आयोजन किया था रिसर्च सेन्टर फॉर विमेन्स स्टडीज, एस.एन.डी.टी., बंबई ने और इसके लिए फंड दिया था फोर्ड फाउंडेशन ने।

इस विषय की महत्ता पहचानकर यह ज़रूरी लगा कि इस तरह की जानकारी और इस मुद्दे पर किया गया अध्ययन किसी रूप में अन्य भाषाओं में भी लोगों तक पहुंचे ताकि इससे जुड़ी चर्चा अधिक व्यापक रूप से हो सके। चूंकि इस फैलते उद्योग का असर हम सभी पर व्यापक या परोक्ष रूप से हो पाए। यह महत्वपूर्ण लगा कि इससे संबंधित बहस में हम सभी शरीक़ हों।

'फूड प्रोसेसिंग' शब्द को हम उसी रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। यह शब्द शायद आम भाषा में इतना इस्तेमाल नहीं किया जाता इस लिए इस शब्द को और विस्तार से स्पष्ट करना हमें जरूरी लगता है। पिछले तीन वर्षों से इसके लिए एक खास मंत्रालय भी बनाया गया है और अगले कुछ वर्षों में यह उद्योग बहुत ही प्रमुखता हासिल करने वाला है, इसीलिए जब हम फूड प्रोसेसिंग उद्योग कहते हैं तो कौन से उद्योगों की बात कर रहे हैं यह साफ होना आवश्यक है।

खेत में उगने वाली खाद्य सामग्री पर की गई हर प्रकार की क्रिया, उसका प्रोसेसिंग है। फिर वह धान की बालियों में से भूसी अलग करने का काम हो, दलहन से दाल बनाने का काम हो, अनाज के दाने सुरक्षित रख संजोने की प्रक्रिया हो, उसे कूटना, सेंकना, भूंजना हो, ताज़ा फलों और सब्जियों को डिब्बों में बंद करना हो, उन्हें ज़्यादा समय तक खाने योग्य रखने के लिए की गई प्रक्रिया हो, या फिर इससे आगे जाकर सीधे खाने-पीने योग्य वस्तुएं बनाने के काम हों, या फिर किसी हद तक तैयार अधपका खाना हो जैसे पापड़, मसाले या आजकल प्रचलित मिक्स, इत्यादि। इन सारी प्रक्रियाओं को जहां कहीं भी व्यापार में परिवर्तित किया गया है, वे सारे प्रतिष्ठान, इस उद्योग के हिस्से माने जाएंगे। फिर चाहे यह प्रक्रिया, घरों में बहुत ही छोटे पैमाने पर

की जाती हो या बाजार में, या फिर मिलों और अब बड़े-बड़े कारखानों में। ये सारे के सारे इस मंत्रालय से संबद्ध हैं और ये सभी इसी फूड प्रोसेसिंग उद्योग के हिस्से माने जाएंगे।

ज़ाहिर है कि इस फूड प्रोसेसिंग पर औरतों का नियंत्रण तो बहुत ही पुराने समय से चला आ रहा है। परंपरागत रुप से औरतें इसमें आगे रहीं हैं और यह औरतों का ही पेशा कहलाया है। औरतों ने ही वे तकनीकें इजाद की जिनसे अनाज संभाल कर रखा जा सके ताकि वह साल भर उपलब्ध रहे। उन्होंने ही अनाज कूटा, भूसी अलग की, मसाले कूटे, दालें बनाई, पापड़, अचार आदि भी बनाए। इन कार्यों के व्यापारीकरण ने औरतों की हिस्सेदारी पर चोट पहुंचाई है। जैसे कि चावल का कचरा निकालने के लिए मिल लगने पर, पुरूषों को ही मिलों और चक्कियों में मज़दूरी मिली। इससे महिलाओं के रोज़गार की संभावना कम हुई, खास करके देहाती इलाकों में।

पिछले पांच दशक में आम तौर पर भारत में महिला मज़दूरों की संख्या घटती जा रही है। इस कटौती का मुख्य कारण है बड़े पैमाने पर मशीनीकरण और व्यापारीकरण जिसमें अक्सर ही औरतों को अपने काम और पेशे से हाथ धोना पड़ा है। वेतनिक काम करने वाली औरतों की तादाद कम होना और उससे औरतों के सामाजिक दजऱ्ा पर होते असर को हमने सबसे पहले समझा और पहचाना 1975 में जब 'कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन' (औरतों के दर्जे पर बनाए गए आयोग) ने अपनी रिपोर्ट सरकार को दी। 1975 की रिपोर्ट में जो बदलाव हम देख रहे थे वे इससे पहले के व्यापारिक और औद्योगिक बदलावों से सब्बंधित थे।

आज जब महसूस हो रहा है कि फूड प्रोसेसिंग उद्योग में इतने परिवर्तन होने जा रहे हैं तो इस उद्योग पर, उसके बदलते ढ़ांचों पर और उसके लिए बनाई जा रही नीतियों पर ग़ौर करना बहुत ही आवश्यक है। इसके अलावा यह वह क्षेत्र है, जिसमें औरतों को मज़दूरी मिलने की संभावना अधिक है। क्योंकि इसमें अधिकांश काम औरतें घर पर करती ही हैं और इसीलिए वे हुनर से भी परिचित हैं। फिर भी इस उद्योग में औरतों के घटते रोज़गार से सवाल यह उठता है कि क्या यह होना अपरिहार्य था? या फिर सच क्या यह है कि नीतियां तय करने वालों के लिए अर्थव्यवस्था में औरतों का योगदान बेमानी था और उन्होंने अनजाने में उन्हें रोज़गार से वंचित कर दिया?

हाथ से कूटने और पीसने वाले पारंपरिक प्रोसेसिंग के उघोगों में, खास करके इन सालों में मशीनीकरण के कारण, महिला मज़दूरों की संख्या कुछ ज़्यादा ही कम हो गई।

लेकिन इस सारे विकास से औरतों को सही में कितना फायदा होगा और यह बढ़ता उद्योग उन के लिए क्या सवाल पेश करता है ये दोनों मुद्दे महत्वपूर्ण हैं। ये बदलाव किस प्रकार के हैं? क्या हम लोग, कार्यकर्ता और शोधकर्ता, इन बदलावों के स्त्रियों पर होने वाले असर को समझ पाएंगे? क्या हम ऐसे बदलाव लाने की कोशिश कर सकते हैं, जो

औरतों को मददगार हों? इन्हीं सवालों पर चर्चा करने के लिए और अपनी सोच स्पष्ट करने के लिए इस कार्यशाला का आयोजन किया गया था।

कार्यशला में पढ़े गए पूरे लेख तो हम इस पुस्तिका में नहीं दे पा रहे हैं। जो हमने यहां दिया है, वह है सब लेखों का एक छोटा सा सारांश। सारांश बनाते वक्त हमने कोशिश कि है कि हर लेख में आए नए मुद्दों को उभारें। इसके लिए कई बार किसी लेख के एक विशेष हिस्से के बारे में ही लिखा गया है। साथ ही यह कोशिश रही है कि जो जानकारी एक लेख में आ गई हो उसे दोहराया न जाए और जो महत्वपूर्ण आंकड़े हों उन्हें भी सारांश के साथ दिया जाए।

विविध क्षेत्रों का इस उद्योग में समावेश होने के कारण, इनका वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। किस हद तक प्रोसेसिंग किया जाता है -- याने कि अनाज पर, या फिर आटा, मिक्स इत्यादि बनाने की स्थिति तक की प्रक्रिया, या खाने योग्य सामग्री बनाने की प्रक्रिया -- यह एक वर्गीकरण हो सकता है। यह काम कहां किया जाता है वह दूसरा तरीका माना जा सकता है -- घर में या निजि खेत में, मतलब घरेलू या व्यक्तिगत स्तर पर, या फिर एक लघु उद्योग के रूप में होटल, दुकान, छोटी मिलें इत्यादि, या बड़ी कंपनियों के बड़े कारखानों में। यह इतना स्पष्ट नहीं होता क्योंकि कई मर्तबा घरेलू और लघु उद्योग ही बडे कारखानों का काम ठेके इत्यादि पर लिए होते हैं। एक और वर्गीकरण का तरीका जो मंत्रालय ने अपनाया है वह है पदार्थ से जुडा हुआ -- याने दूध और दूध के सारे उत्पादन एक साथ, मछली पकड़ना और उसकी डिब्बाबंदी एकसाथ, पोल्ट्री एक साथ वगैरह। इन लेखों में आगे एस. हरिप्रसाद और पी. एस. बालकृष्णन ने एक नया वर्गीकरण सुझाया है। खाने का मूलभूत ज़रूरी प्रोसेसिंग, अनाज, दाल, फल, सब्जी, दूध इत्यादि का, सहूलियत के लिए किया गया प्रोसेसिंग, नाश्ते की चीजें, तैयार मिक्स पोहे इत्यादि पोषण के लिए विशेष खाना, बच्चों के लिए पावडर इत्यादि और अन्य खाद्य पदार्थ जैसे चाय, काफी, शरबत इत्यादि। अध्ययन किन मुद्दों पर ज़ोर देता है इसी से यह तय होता है कि कौनसा वर्गीकरण ज़्यादा उपयुक्त होगा।

ऐसे ही एक वर्गीकरण के आधार पर फूड प्रोसेसिंग में जुड़े युनिटों को मुख्यतः तीन वर्गों में बाटा गया है। ये युनिट सभी उघोगों में लगाए गए युनिटों के 19% हैं और कुल मज़दूरों के 17% इन युनिटों में मज़दूरी करते हैं। ये तीन वर्ग कुछ इस प्रकार हैं,

1) प्राथमिक प्रोसेसिंग जिसमें है 93,000 धान साफ करने की मिलें, 1,00,000 आटे की चक्कियां, 10,000 दाल मिलें और 2,20,000 तेल मिलें।

2) असंगठित क्षेत्र जिसमें है 50,000 बेकरी, 5,000 पेस्ट गुड युनिट, 15,000 पारंपरिक खाना बनाने के युनिट, 2,000 पोहा बनाने के युनिट, 5,000 फल-सब्ज़ी प्रोसेसिंग एवं मसाले बनाने के युनिट।

3) संगठित विभाग जिसमें 600 कारखाने हैं जो अलग-अलग किस्म के खाद्य पदार्थ बनाते हैं। (18,000 उत्पादन इकाइयां, उत्पादन 8,000 करोड़ रूपये)

इन आंकड़ों में बहुत सारे घरेलू, छोटे मोटे युनिटों की तो गिनती तक नहीं की गई है।

(आंकड़े लिए गए हैं मैथिली रवि और जी. सुभलक्ष्मी के लेखों से।)

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि यह उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जैसे कि पहले भी हमने कहा है, पारंपरिक रूप से इन कामों की ज़िम्मेदारी संभालने के कारण औरतों को इस उद्योग में वैतनिक काम मिलना स्वाभाविक लगता है। परंतु इस बढ़ते मशीनीकरण के युग में महिला मज़दूरों की संख्या घटती जा रही है। अगर काम मिलता भी है तो वेतन बहुत कम और अन्य सुविधाएं तो ना के बराबर।

कार्यशाला में काफी लेखों में इन्ही बातों पर ज़ोर दिया गया है। उद्योग में मशीनीकरण बढ़ने से रोज़गार पर क्या असर पड़ा, जहां महिलाएं और पुरूष दोनों काम करते हैं वहां भेदभाव किस प्रकार का होता है, जिन उघोगों में अधिकांश औरतें ही काम करती हैं, वहां शोषण ज़्यादा क्यों होता है, वहां काम करने वाली औरतों के हालात क्या हैं, उघोग के सार्वजनिक या निजि क्षेत्र में के होने से क्या फर्क़ पड़ता है इन सवालों पर काफी अध्ययन किए गए हैं। किसी एक उद्योग विशेष को लेकर, या सरकारी आंकड़ों के आधार पर या फिर कुछ युनिटों में जाकर वहां काम कर रहीं औरतों से बातचीत करके। कुछ पूर्णतया औरतों के कोओपरेटिव और संगठनों के काम, परिप्रेक्ष्य उपलब्धियों, दिक्कतों, खामियों इत्यादि के ब्यौरे भी हैं।

इस तरह के उद्योग जिनमें अधिकांश औरतें असंगठित, अनौपचारिक क्षेत्र में हैं, उन में संगठन बनाने का और जो संगठन बने हैं उनका अध्ययन, यह भी एक विषय रहा है। महिलाओं के संगठन जो फूड प्रोसेसिंग उद्योग से जुड़े हैं, उनका अध्ययन भी किया गया है। उद्योग की विशेषताओं के कारण, संगठन बनाने में भी विशेष तरीकों को अपनाना ज़रूरी है।

जिस तरह से संगठित हो कर उद्योग में कार्यरत औरतों की शक्ति बढ़ना ज़रूरी है, वैसे ही सरकार के नीति नियमों का अध्ययन भी ज़रूरी है। सरकार बहुत सारी संस्थाओं के ज़रिये अपनी साझेदारी का बखान कर रही है। उद्योग को हर प्रकार से मदद करना

ताकि यह क्षेत्र विकसित हो, कर्ज़ उपलब्ध कराना, तकनीकी ज्ञान, बिक्री के लिये मार्केट, और सबंधित संस्थाओं का निर्माण, इत्यादि। लेकिन भारत की परिस्थितियों में यह कितना उचित है? कितनी हदतक औरतों तक यह पहुंच सका है और औरतों को इससे कितना फायदा हुआ है? इनसे संबंधित कुछ लेख भी कार्यशाला में पढ़े गए। सरकार की नितियों और उनके द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रमों की समीक्षा इनमें की गई है। साथ ही इस उद्योग में औरतों की स्थिति सुधारने के लिए सरकार द्वारा किए जा सकने वाले सकारात्मक हस्पक्षेप के भी सुझाव हैं -- फिर चाहे यह खाद्य टेक्नॉलॉजी में शोध करने वाले संस्थान का योगदान हो या खादी ग्रामोद्योग कमिशन जैसी उद्योग में सहयोगी संस्थाओं का।

उद्योग और औरतों की बेहतर स्थिति से हटकर कुछ लेख हैं जो प्रोसेसिंग से खाने के पोषक तत्वों पर होते असर का अध्ययन करते हैं। इन का ज़ोर औरतों के पोषण पर न होकर एक अलग दृष्टिकोण से 'पोषण' को समझने का है। किस तरह से पोषण के मद्देनज़र प्रोसेसिंग की प्रक्रिया चुनना ज़रूरी है, इस पर इन लेखों का फोकस है। यह इस उद्योग का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

फूड प्रोसेसिंग में इस तरह के और कई मुद्दे हैं जिन्हें इन अध्ययनों में नही टटोला गया। यह तो ज़ाहिर है कि बढ़ते उद्योग की ज़रूरतें पूरी करने के लिए खास किस्म के कच्चे माल का उत्पादन ज़रूरी होगा। पर्यावरण और कृषि के तरीकों पर इस चयन दूरगामी असर होगा। इस उद्योग द्वारा कृषि में किस तरह के बदलाव लाए जाएंगे, इन बदले हुए तरीकों से भोजन की उपलब्धि पर क्या असर होगा, इनका स्वास्थ्य और पोषण पर क्या असर होगा, औरतों की स्थिति पर क्या असर होगा इन विषयों पर भारत में ज़्यादा अध्ययन नहीं किया गया है। इन अन्य विषयों पर अन्य देशों में किए गए अध्ययनों के आधार पर लिखा गया है दिव्या पांडे और मीरा सवारा का लेख जो इस पुस्तिका में जोड़ा गया है। इसके अलावा कार्यशाला के आयोजक होने के नाते, आगे शोध के विषयों पर कुछ सुझाव भी इन्होंने लिखे हैं। इस पुस्तिका के अंत में कार्यशाला की चर्चा से उभरे उद्योग संबंधी सुझावों की सूची जोड़ी गई है।

हिंदी में इस सबका संक्षिप्त भावानुवाद करते हुए एक अहसास हमें बार बार होता रहा। हमारा जीवन, हमारा अस्तित्व एक स्तर पर तो विश्व के हर कोने से जुड़ा हुआ और दूसरी तरफ उतना ही खुद की जाति, परिवार से बंधा हुआ सा असुरक्षित। हमारे निजि जीवन पर नियंत्रण कहीं दूर तय होती आर्थिक नीतियों और विश्व की पर्यावरण स्थिति के द्वारा। हमारे एकदम जाती सवालों पर फिर चाहे वह प्रजनन याने इंसानों के सृजन से जुड़े हों या कृषि याने खाद्य सामग्री के सृजन से जुड़े हों, लगातार होता हस्तक्षेप, आधुनिकता, अधिक उत्पादन, इत्यादि द्वारा।

पर इन सबसे जूझने की, अपना परिप्रेक्ष्य विकसित करने की, और लगातार, नए नाम से होते आघातों से निपटने की ज़िम्मेदारी और भविष्य के सपने बुनने और मंज़िल तय करने का दायित्व तो हम सभी पर ही है -- हम, जो इस प्रोसेसिंग प्रक्रिया के उत्पादनों को इस्तेमाल करने वाले हैं और जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस उद्योग में आम इंसानों के रूप में जुड़े हैं। और इसी में एक कदम है यह छोटी सी पुस्तिका, हम सभी की ओर से उठाया गया यह छोटा पहला कदम।

पृष्ठभूमि

फूड प्रोसेसिंग और औरतें -- उभरते मुद्दे

दिव्या पांडे और मीरा सवारा

भूमिका

अप्रैल 1990 में हमने 'औरतें और फूड प्रोसेसिंग' इस विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया था। उस समय काफी सारी पाठ्य सामग्री भी साथ ही तैयार की थी। इस सारे प्रयास के पीछे मुख्य कारण यह था कि दो वर्ष पहले फूड प्रोसेसिंग की एक अलग मंत्रालय बनने के पश्चात इस उद्योग मे इतने बदलाव आ गए थे कि हम में से कई लोगों को तो इनके बारे में जरा भी अंदाज़ नहीं था। चूंकि बदलाव की प्रक्रिया अब भी चालू है और, इन विषयों पर खास शोध और अध्ययन कुछ ही लोग कर पाए हैं -- इन कारणों से ही हमें लगा कि ज़रूरी है कि हम इस विषय पर अखबारों में आए रिपोर्ताज को इकट्ठा प्रकाशित करें ताकि हमें जानकारी मिल सके कि इस देश में यह उद्योग किस ओर बढ़ रहा है। हमारी समझ में इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के सामाजिक व आर्थिक पहलू बहुत महत्वपूर्ण हैं और हम उन्हें नज़रअंदाज नहीं कर सकते। जो होने जा रहा है वह केवल प्रक्रिया में ही बदलाव नहीं है। वह तो संपूर्ण घरेलू अर्थ व्यवस्था का कायापलट है।

उस वक्त प्रकाशित रिपोर्ट जो कि रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज़ बंबई मे उपलब्ध है, पर आधारित है यह लेख। इसमें उन सारी कतरनों और लेखों का सारांश है।

हाल में हुए बदलाव

फूड प्रोसेसिंग उद्योग के लिए नई मंत्रालय का गठन किया गया जून-जुलाई 1988 में और इसीके साथ इस देश की अर्थव्यवस्था में कई नए और महत्वपूर्ण बदलाव हुए। इस वक्त (मार्च 90) में, यह स्पष्ट नहीं है कि आगे सरकार का रवैया क्या होगा। पर ऐसा लगता है कि जो चला आ रहा है वह उसी दिशा में चलता रहेगा। 1990-91 के बजट से यह साफ है कि कृषि उद्योगों को प्राथमिकता दी जाएगी और साथ ही फूड प्रोसेसिंग उद्योग में मदद कम की जाएगी।

आज फूड प्रोसेसिंग उद्योग का फैलाव कितना है?

फूड प्रोसेसिंग उद्योग की बात करते वक्त हम काफी सारे किस्म के उत्पादनों की बात करते हैं। इन सभी को मुख्यतः तीन हिस्सों में बांटा गया है -- जैसे कि प्राथमिक प्रोसेसिंग; असंगठित और घरेलू उद्योग; और फूड प्रोसेसिंग के बड़े, आधुनिक उद्योग। आर्थिक गणना के लिए और उत्पादकोंके सर्वे के अनुसार खाद्य सामग्री उत्पादन के तहत इन सब का वर्गीकरण किया गया है। करीब 250 सामग्रियों का इसमें समावेश है और मुख्य वर्गीकरण कुछ इस प्रकार है:

200: मांस के लिए जानवर मारना, तैयार करना और सुरक्षित, टिकाऊ रुप से रखना
201: डेरी से प्राप्य पदार्थों का उत्पादन
202: फल और सब्जी की डिब्बाबंदी और संरक्षण
203: मछलियों की डिब्बाबंदी और संरक्षण
204: अनाज मिल के उत्पादन
205: बेकरी का कामकाज
206: शक्कर की सफाई और उत्पादन
207: देसी शक्कर का उत्पादन
208: नमक का उत्पादन
209: कोको, चॉकलेट इत्यादि का उत्पादन
210: डालडा इत्यादि का उत्पादन
211: अन्य खाने योग्य तेल और चरबी का उत्पादन
212: चाय की पत्ती पर की जाने वाली प्रक्रिया
213: कॉफी की सफाई, सेंकना और पीसना
214: काजू पर होने वाली प्रक्रिया
215: बर्फ का उत्पादन
216: जानवरों को खिलाने की तैयार सामग्री का उत्पादन
217: स्टार्च का उत्पादन
218: अन्य जगह वर्गीकृत नहीं किए गए उत्पादन

इनमें से कुछ वस्तुओं के उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई है। फल-सब्जी, ठंडे पेय, चॉकलेट, डेरी और अनाज के उत्पादन से सालाना 61,000 करोड़ रूपये का उत्पादन होता है।

प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ का एक बड़ा हिस्सा फिलहाल निर्यात किया जाता है। ''जबकि 1971-72 में मुख्य निर्यात चाय और कॉफी का था, और मांस, अनाज, फल व सब्जी बहुत ही अल्प मात्रा में बाहर बेचे जाते थे; 1981 के आते तक इन सभी की निर्यात की मात्रा बढ़ गई थी -- 28 करोड़ रुपए की मछली, 380 करोड़ रुपए का अनाज और उससे बनी अन्य सामग्री, 280 करोड़ रूपए की फल और सब्जी (इकोनोमिक टाइम्स; 10 अगस्त 1989)

यही झुकाव बढ़ता और फैलता जा रहा है। 1977-78 से — ताजे फल और सब्जी के निर्यात में 437% बढ़त; प्रोसेस्ड फल और सब्जी में 174% बढ़त; मांस और मांस से बने उत्पादनों में 214% बढ़त; और 'अन्य' चीजों में 172% बढ़त।

प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ निर्यात के लिए उपयुक्त होते हैं। निर्यात से मिलने वाली आय 1986-87 में 298.6 करोड़ रूपए से बढ़कर 1987-88 में 347 करोड़ रूपए और अब 1988-89 में 396 करोड़ रूपए हो गई है -- हालांकि अभी भी यह रकम देश के कुल निर्यात का एक छोटा सा हिस्सा भर है (इकोनोमिक टाइम्स, 10 अगस्त 1989)।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग

इस मंत्रालय के तहत निम्न उद्योग आते हैं:

-- फल और सब्जी उद्योग
-- अनाज कूटने/पीसने का उद्योग
-- दूध पावडर, बच्चों के लिए बनाए गए खाद्य पावडर, कंडेन्सड मिल्क, घी इत्यादि जैसे उत्पादन
-- पोल्ट्री, अंडे, मांस और मांस से बने पदार्थों का प्रोसेसिंग और रेफ्रीजरेशन
-- मछली का प्रोसेसिंग (डिब्बाबंदी और संरक्षण)
-- मछली प्रोसेसिंग उद्योग के लिए विकास परिषद का गठन करना और उसे कार्यान्वित रखना
-- मछली प्रोसेसिंग उद्योग को तकनीकी सलाह और मदद
-- भारत की सरहद के बाहर के पानी में मछली पकड़ने का इंतज़ाम और देखरेख

(फाइनान्शियल एक्सप्रेस 26 दिसंबर 1989)

मंत्रालय ने मुख्यतः ये बदलाव किए: ''दूध और जौ के पदार्थ और आटे के अलावा सारे फूड प्रोसेसिंग उद्योग, और लघु उद्योग के लिए रखे गए पदार्थों को छोडकर फूड प्रोसेसिंग में लगने वाला सारा पॅकिंग का माल, दोनों ही औद्योगिक विकास तथा नियमन परिशिष्ट 'A' में रखे गए हैं।

''इससे बडी कंपनियां इस उद्योग की ओर बढ़ेंगी और बडे पैमाने पर उद्योग चलाए जा सकेंगे। इससे फसल की कटाई के बाद अनाज की बरबादी को भी रोका जा सकेगा। इसके साथ ही विस्तृतता की सहूलियत लघु उद्योगों के लिये रखे गये पदार्थोंको छोडकर फल और सब्जी के पदार्थ और फूड प्रोसेसिंग के सभी उत्पादनों के लिए दी गई है जो लघु उद्योग के तहत नहीं आते। इस सारे उद्योग में लगने वाले कई औज़ार, जो इस देश में नहीं बनाए जाते, को भी OGL में रखा गया है और उन पर कस्टम ड्यूटी में भी रियायत दी गई है। इसके अलावा और कई तरह की आर्थिक छूट दे कर, सरकार की इच्छानुसार इस उद्योग को बढ़ाने की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है और उसको महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के प्रयत्न हैं।

''और भी कई किस्म की रियायतें हैं -- पोल्ट्री की आय पर आयकर लगाते वक्त कुल आय के लगभग एक तिहाई हिस्से पर छूट, रेफ्रीजरेशन के लिए लगने वाले यंत्र व मशीनों पर एक्साइज़ 40% की जगह 15% कर दी गई है, अन्य कुछ कटौतियाँ इस प्रकार की हैं -- फूड प्रोसेसिंग मशीनों पर भी एक्साइज़ 90% की जगह 40% दूध पावडर और कंडेन्सड मिल्क पर 15% की जगह 10% और मछली उद्योग में लगने वाले खास यंत्रों पर 61% की जगह 40% कर दी गई है।''

मंत्रालय के कार्यों को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है: (i) विकास से जुड़ा (ii) विनियमन से जुड़ा और (iii) तकनीकी सहायता और सलाह से जुड़ा। ये सारे काम मंत्रालय और उससे संलग्न अन्य संस्थानों के संबंधित विशेषज्ञों द्वारा किए जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के दो व्यापारिक संस्थान, मॉडर्न फूड इंडस्ट्रीज (इंडिया) लि., और नार्थ ईस्टर्न रीजनल ॲग्रीकल्चरल मार्केटिंग कारपोरेशन लि., जो कि केवल फूड प्रोसेसिंग और उन पदार्थों की बिक्री से संबंधित हैं, मंत्रालय के प्रशासन में रखे गए हैं।''

''मंत्रालय एक तरह से उस उत्प्रेरक की ज़रूरत पूरी कर रहा है जो कि ग्रामीण औघोगीकरण का खेती आधारित ढांचा बनाकर टेक्नॉलॉजी के स्थानांतरण में, ग्रामीण लोगों की आय बढ़ाने में और उनके लिए, खासकर ग्रामीण औरतों के लिए, सर्थक रोज़गार दिलवाने में सहायक होगा।''

''मंत्रालय का एक और उद्देश्य यह है कि फसल कटने के पहले या बाद में उसे सड़ने व बरबाद होने से बचाया जाए। फलों और सब्जियों के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। इससे, आशा यह है कि खाद्य सामग्री का आर्थिक उपयोग सुधरेगा और साथ ही लोगों को ज़्यादा पौष्टिक भोजन भी मिल पाएगा।''

''यह अंदाज़ है कि सही तरीके से प्रबंध न होने के कारण और किसानों का फूड प्रोसेसिंग उघोगों से सीधा संबंध न होने के कारण हर वर्ष लगभग तीन हज़ार करोड़ रुपयों की कीमत के फल और सब्जियां बरबाद हो जाती हैं। यह हमारे हित में है कि हम इस तरह की बरबादी को रोकें और साथ ही इन उद्योगों को कच्चा माल पहुंचाएं क्योंकि इनकी

कुल क्षमता का केवल 38% ही साकार किया जाता है। इसके साथ ही यह ज़रूरी है कि हमारी आबादी के कमजोर तबकों को ताज़ा फल और सब्जी मिल सके जिससे उन्हें पौष्टिक भोजन प्राप्त हो सके।''

यह आश्चर्य की बात है कि जहां उद्योग को बढ़ावा इसलिए दिया जा रहा है कि बरबादी पर नियंत्रण लाया जा सके, वहीं मंत्रालय इस उद्योग के लिए विशेष प्रकार के कच्चे माल को बनाने की तकनीकों पर भी छूट दे रहा है। सन्डे ऑब्जर्वर में जगदीश टाइटलर कहते हैं (16 अगस्त, 1989): ''संकर बीजों के आयात पर दी गई छूट के कारण अब फूड प्रोसेसिंग उद्योग सीधे ही अपनी ज़रूरतानुसार संकर बीजों का आयात कर सकेंगे। उन्हे सिर्फ क्वारेंटाइन का पालन करना होगा।'' कनफेडरेशन ऑफ इंडियन फूड ट्रेड एन्ड इंडस्ट्री द्वारा स्थापित विशेषज्ञ दल का भी यह सुझाव रहा है कि उपज में काफी बढ़त के लिए जल्द से जल्द ज़्यादा उपज देने वाली फसलें विकसित करना चाहिए। इसके अलावा वे यह भी सुझाते हैं कि शोध संस्थानों ने उन फसलों/फलों पर शोध को प्राथमिकता देनी चाहिए जो अधिकतम निर्यात हो सकते हैं, जैसे आम, अनन्नास, अमरूद, टमाटर, प्याज़, लहसून, भिंडी व संतरा, नींबू जैसे खट्टे फल, इत्यादि। (फाइनान्शियल एक्सप्रेस के सर्वे से - 26 दिसंबर, 1989)

फूड प्रोसेसिंग में औरतें

पदार्थों और तकनीकों के इस विस्तृत फैलाव में औरतों की इस उद्योग में क्या भागीदारी है और कहां पर? एवरेट और सवारा (1989) ने फूड प्रोसेसिंग के विभिन्न स्तरों को पहचाना है। उन्होंने इसका वर्गीकरण निम्नानुसार किया है:

(i) खाने का उत्पादन कहां होता है
(ii) खाने का उपभोग कहां और किसके द्वारा किया जाता है
(iii) किस तरह से खाना बेचा जाता है

फूड प्रोसेसिंग की जगह कोई भी हो सकती है -- घर, सड़क, दुकान, काम की जगह, होटेल, छोटे और बड़े कारखाने।

उनका कहना है कि, ''आज भारत में इस उद्योग से संबंधित जो भी बदलाव हो रहे हैं उनका उत्पादन प्रक्रिया में औरतों की हिस्सेदारी पर नकारात्मक असर होगा। वैसे भी मंत्रालय के स्थापित होने की बात से ही एक प्रचलित प्रवृत्ति की पुष्टि होती है -- यह प्रवृत्ति है पूंजी प्रधान, बड़े उद्योगों को अपनी ओर आकर्षित करने की। बेशक इन बड़े उद्योगों में औरतों को थोड़ा बहुत रोज़गार मिल सकता है, परंन्तु उनकी रोज़गार की गुंजाइश कम ही रहेगी। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के पूंजी प्रधान औघोगिक संस्थान, अदृश्य रूप से घरों से विकेन्द्रित रूप में औरतों द्वारा बाजार के लिए किए जा रहे उत्पादन को पूरी तरह खत्म कर देंगे। बड़े शहरों में, जहां मध्यम वर्ग की औरतें घर से बाहर काम के लिए जाती हैं और काफी समय घर से बाहर रहती

हैं वहां प्रोसेस्ड पदार्थों का बाज़ार विकसित होना स्वाभाविक है। ऐसे समय पर, जब बाज़ार बढ़ रहा हो, बाज़ारमुखी फूड प्रोसेसिंग गतिविधियों में औरतों के योगदान और सहभाग को खतरे में डाला जा रहा है।'' (ऐवरेट और सवारा, 1989)

बायोटेक्नॉलॉजी

असोकाम के अध्यक्ष श्री विरेन शाह ने इस ओर इंगित किया है कि भविष्य में शायद बहुत बड़े पैमाने पर बायोटेक्नॉलॉजी का फैलाव होगा (बिज़नेस स्टेन्डर्ड, 15 फरवरी 1990)। भारत में इसकी शुरूआत हो चुकी है। इसका सबूत है एक प्रस्ताव जो कि बीजों पर शोध करने वाले बायोटेक्नॉलॉजी केन्द्र के गठन को प्रोसेस्ड फल और सब्जी के निर्यात के साथ जोड़ता है। प्रस्तावित परियोजना लागू की जाएगी PEPSICO, टाटा तथा पंजाब एग्रो इंडस्ट्रीज़ के साथ... ''पेप्सी परियोजना फल और सब्जी के ऐसे बीज बनाने वाली तकनीकों को बढ़ावा देती है जो इन वस्तुओं को प्रोसेसिंग के अनुकूल बनाएंगीं। पेप्सीको ने बीज और प्रोसेसिंग के इस गठबंधन को पुख़्ता किया है। साथ ही ऐसी अन्य 'विकसित' तकनीकों को भी बढ़ावा दिया है जिनसे हमें एक चेतावनी लेनी चाहिए कि नई क्रांति, प्रकृति और औरतों के खिलाफ होगी। इस मुनाफाखोर प्रवृत्ति को 'उत्तम' पौधे, 'उत्तम' वृक्ष और 'उत्तम' बीज के ज़रिये पूरा किया जाएगा।'' (वं. शिवा, 1988:133-39) इस तरह से यह उद्योग अतिरिक्त कच्चे माल के प्रोसेसिंग के लिए न होकर, इस उद्योग के लिए खास कच्चा माल तैयार किया जाएगा। इसके अलावा, इसमें से अधिकांश भाग निर्यात किया जाएगा जिसका मतलब है कि इस देश के लोगों के भोजन के लिए जोती गई ज़मीन और कम हो जाएगी।

अपने क्रॉफर्ड मेमोरियल भाषण में कृषि वैज्ञानिकों को संबोधित करते हुए डॉ. स्वामीनाथन ने कहा था कि ग्रामीण पेशों में बायोटेक्नॉलॉजी द्वारा भेजा और भूसी जोड़ने का काम किया जा सकता है। उदाहरण है केरल राज्य का जहां एरनाकुलम ज़िले को 'बायोटेक्नॉलॉजी ज़िले' के रूप मे विकसित किया जा रहा है, ताकि पढ़े लिखे इंसानों का फायदा उठाया जा सके, खास कर के पढ़ी लिखी औरतों का, जिनके पास सही किस्म की नौकरियां नही हैं। इस प्रोग्राम के तहत टिशू कल्चर से जंगल के वृक्षों की प्रजातियों को विकसित किया जाएगा, ढोर तथा पोल्ट्री में सुधार लाया जाएगा और बायोमास रिफायनरी स्थापित की जाएंगी। (हिन्दू, 3 नवंबर 1990)

विदेशी कंपनियों को बढ़ावा

बलदेव सिंह (EPW, 2-9 अप्रैल 1988) ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि विदेशी कंपनियों के बढ़ जाने से क्या होगा। ''इसका नकारात्मक पहलू यह होगा कि जहां एक तरफ सांस्कृतिक स्तर पर हम अलगाव महसूस करेंगे वहीं पश्चिमी देशों की तरह आक्रामक शैली में T.V. और अन्य माध्यमों से बड़े पैमाने पर विज्ञापनों द्वारा इन

वस्तुओं का बाज़ार बनाया जाएगा। पहले ही कम मात्रा में उपलब्ध साधनों को हम यों ग़ैर ज़रूरी चीज़ों में बरबाद कर देंगे।''

टेक्नॉलॉजी का चयन: स्वदेशी या आयातित

इस मंत्रालय के गठन पर और उसके बाद हाल की घटनाओं पर कई विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएं हुई हैं। कुछ का कहना है कि, ''मुख्यतः कुटीर और लघु उद्योगों पर ज़ोर देना चाहिए'' (बिज़नेस स्टेन्डर्ड, 28 नवंबर 1989)। यह चिंता भी है कि, ''आयातित टेक्नॉलॉजी के लिए कोई नीति नहीं है'' और केन्द्रीय खाद्य टेक्नॉलॉजी शोध संस्थान (CFTRI), जिसने कई किस्म की टेक्नॉलॉजी विकसित की है, ''से सलाह भी नहीं ली गई। टेक्नॉलॉजी के असर को समझने के लिए यह एक नियम के तौर पर भी ज़रूरी था।''

CSIR के टेक्नॉलॉजी उपयोग सेल के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. बलदेव सिंह का कहना है कि, ''फूड प्रोसेसिंग से जुड़ी टेक्नॉलॉजी अपने आप में एक पूरा उदाहरण है कि बाहरी संस्कृति और टेक्नॉलॉजी, जिसका इस देश में विकसित टेक्नॉलॉजी से कोई संबंध नहीं, को यहां लादने से यहां की अपनी टेक्नॉलॉजी के आधार को ही हम नष्ट या विकृत कर देंगे।''

''एक मत जो बार बार रखा गया है, वह यह है कि ये सारे साझा उपक्रम वगैरह इसलिए है ही नहीं कि खाद्य सामग्री उचित दामों पर मिल सके। इस आयातित टेक्नॉलॉजी का घरेलू शोध संस्थानों और उद्योगों पर विपरित असर भी चिंता का एक मुद्दा है।''

हाल ही में खाद्य टेक्नॉलॉजी में शोध करने वाले अग्रणी संस्थान CFTRI के अध्यक्ष डॉ. बी. एल. आमला ने एक ऐसी नीति बनाने की ज़रूरत बताई जिससे आयातित टेक्नॉलॉजी का विनियमन हो सके। उनके अनुसार इसकी ज़रूरत खास इसलिए है कि आज फूड प्रोसेसिंग उद्योग विदेशी कंपनियों के साथ काम करना चाहते हैं, सिर्फ उनकी तकनीकें लेना भर नहीं। इससे देश में विकसित टेक्नॉलॉजी तो पूरी तरह से नज़रअंदाज़ हो रही है।''

''आजकल आयातित टेक्नॉलॉजी एक पूरे पैकेज के रूप में आती है। इसमें मशीन और यंत्र तो होते ही हैं पर साथ ही कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो प्रोसेसिंग की प्रक्रिया में ज़रूरी हैं और जो उसी फर्म या कंपनी द्वारा बनाए जाते हैं और उन्हीं के पास से लेने होते हैं। इनमें कुछ रसायन, स्टार्च, एनज़ाइम वगैरह हैं जो उस पदार्थ के रंगरूप, बनावट इत्यादि में बदलाव करने के लिए ज़रूरी होते हैं।''

''पूंजी प्रधान और कम मज़दूरी वाली तकनीकों को कृषि और कृषि उद्योगों में बढ़ावा देने पर जहां एक तरफ देश में विकसित टेक्नॉलॉजी को मान्यता प्राप्त नहीं होगी वहीं रोज़गार संबंधित एक विस्फोटित स्थिति बनने की भी संभावना है। इसका यह मतलब नहीं कि हम सदियों पुरानी तकनीकों को ही ढोते रहें। पर किस तरह की तकनीक लाते

हैं और किस तरह से उसे लागू करते हैं इसके तरीके कुछ अलग होने चाहिए। विकसित देशों से लाई गई टेक्नॉलॉजी यहां के लोगों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश से मेल नहीं खाएगी और इसलिए जरूरी है कि नई तकनीकों के सार्थक मेल मिलाप के लिए उन्हें परंपरागत टेक्नॉलॉजी के साथ जोड़ा जाए। परंपरागत तकनीकों से खाद्य सामग्री की बरबादी को हमेशा रोकने का प्रयास किया गया है और साथ ही पौष्टिक खाना भी उपलब्ध कराया गया है। आज यह ज़रूरी है कि परंपरागत तकनीकों पर जानकारी इकट्ठी की जाए, उनका मूल्यांकन किया जाए और आधुनिक तकनीकों के साथ इनका मेलजोल करवाया जाए। अनाज और धान को सुरक्षित रखने के, तथा सड़ने की संभावना वाले अन्य पदार्थों को प्रोसेस करने के तरीकों को वैज्ञानिक ढंग से समझने, सुधारने और विकसित करने की ज़रूरत है।'' (बिज़नेस स्टेन्डर्ड, 28 नवंबर 1989)

खाद्य सामग्री सुरक्षित रखने के कई सस्ते तरीके विकसित किए गए हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) के विजय सेठी कहते हैं (IARI बुलेटिन, 1985), ''विकसित देशों में फसल की कटाई के बाद फलों और सब्ज़ियों के उपयुक्त तरीके से प्रोसेसिंग का पूरा ढांचा तैयार है। इन सड़ सकने वाली चीज़ों की कटाई, संग्रह, एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना, प्रोसेसिंग, ब्रिक्री आदि का पूरा ढांचा आज बन पाया है। लेकिन यह आधारित है ज़्यादा शक्ति लगने और ज़्यादा खर्च वाले प्रोसेसिंग के तरीकों पर जो कि भारत जैसे देश में कर पाना संभव नहीं। वैकल्पिक रूप से यहां पर ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक इस तरह की तकनीकों के उत्पाद उपलब्ध करवाने के लिए कम खर्च और कम ऊर्जा खपत वाले तरीके अपनाना ज़रूरी है। इन तरीकों में है धूप में सुखाना, अचार डालना, fermentation और अन्य रासायनिक तरीके। इन तरीकों मे खपत से बची उपज का उपयोग, कटाई के बाद बरबादी में कटौती, कृषि करने वालों को ज़्यादा फायदे, फलों व सब्ज़ियों की बागवानी को बढ़ावा, आदि तो शामिल हैं ही।''

यही ध्यान में रख IARI, नई दिल्ली में कुछ काम किया गया है। ज़रूरतों पर आधारित और आर्थिक रूप से उपयुक्त, सरल और सस्ती तकनीकों को सुधार कर अपनाने की कोशिश की गई है। विशेष तौर पर धूप में सुखाने, देसी फलों के प्रोसेसिंग करने और रासायनिक प्रक्रियाओं से या फिर नगण्य ऊर्जा खपतवाली शीत प्रणालियों के उपयोग से फलों व सब्ज़ियों को बचा कर संग्रह करने के तरीकों पर ज़ोर दिया गया है।

कुछ लोगों का मत रहा है कि फल/सब्ज़ी इत्यादि को यों ठंडा कर संरक्षण करना मूलभूत रूप से आपत्तिजनक है। भारत में ताज़ा फल व सब्ज़ी ही लोगों को पसंद है और घरेलू स्तर पर सुखा कर संग्रह करने के कई तरीके भी लोगों के पास हैं। आम इंसानो

के लिए यह सब तो अनावश्यक भोग की चीज़ें मात्र हैं। इस तरह के 'विकास' का कारण यही हो सकता है 'कि पश्चिमी देशों के फिरंगी हमारे फल हड़पना चाहते हैं।'

हमारे लिए तो यह ज़रूरी है कि हम ऐसी तकनीकें विकसित करें जिनसे भोजन में रासायनिक मिलावट न रहे और जिनमें हानिकारक रसायनों का उपयोग बिल्कुल न किया जाए।

कोओपरेटिव व असंगठित क्षेत्र:

बड़ी कंपनियों पर जब सरकार का इतना ज़ोर होता है तब कहीं यह भुला दिया जाता है कि इस उद्योग से जुड़ें अधिकतर काम तो असंगठित क्षेत्र में ही होते हैं। इन बड़े उघोगों के आने से इन सारी असंगठित इकाइयों और लाखो लोगों के काम पर प्रतिकूल असर होगा। इस उद्योग को बढ़ावा क्या इस प्रकार से नहीं दिया जा सकता कि इन लोगों की स्थिति और काम करने के हालातों में कुछ सकारात्मक परिवर्तन हों? (इकॉनॉमिक टाइम्स, 11 जुलाई 1989)

''असंगठित क्षेत्र में हर वह भोजन शामिल है जो खाने के लिए तैयार रूप में बेचा जाता है। वह सड़क पर बेचा जा सकता है या फिर कच्ची अस्थाई दुकानों से। जैसे कि उत्तर भारत में पाए जाने वाले ढाबे हों या फिर सरकारी कार्यालयों के पास, कारखानों के पास, सड़क के किनारे, बस-स्टेन्ड इत्यादि पर हाथ ठेलों और लारियों पर मिलने वाला लगभग पूरा खाना हो। बंबई, पूना और बंगलौर में तो एक बहुत ही सुव्यवस्थित प्रणाली द्वारा ऑफिसों में टेबल पर खाने के डब्बे पहुंचाए जाते हैं। काम पर दोपहर का खाना अब पूरी तरह से इन शहरों में अपना लिया गया है। दक्षिण के काफी सारे शहरों और कस्बों में, अधिकतर औरतों द्वारा चलाए गए घरेलू किस्म के 'मेस' होते हैं जो दोनों समय का खाना खिलाते हैं। होटलों और रेस्टॉरन्ट की जगह लोग यहां जाते हैं क्योंकि माहौल कुछ अपनापन लिए होता है और खर्च भी कम आता है। इन्हे सिर्फ चाय नाश्ते की दुकानें कहकर नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।''

''इन सारी छोटी छोटी जगहों पर सबसे बड़ा आरोप यह है कि वे जो खाना देते हैं वह खतरे से खाली नहीं होता। उनसे सफाई और स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। एक हद तक तो ये आरोप सही हैं पर और गहराई में जाने की ज़रूरत है। सरकार और स्थानीय कर्मचारी तो इसी आधार पर इन्हें हटाने की कोशिश करेंगे। मगर इन पर ज़्यादा नियम लादने का नतीजा होता है घूसखोरी, न कि खाना पकाने में ज़्यादा सफाई। विस्तार से देश भर में सवत करने पर कई पोषण के विशेषज्ञों का कहना है कि यह खाना सफाई की दृष्टि से उतना ही सुरक्षित है जितना कि उनके घर पर पकाया गया खाना है। अगर स्वास्थ्य और सफाई समान स्तर की है, तो ग्राहक अन्य कारणों से इस खाने को स्वीकार करते हैं। मसलन है खाना पकाने व सफाई करने इ. मे लगनेवाले समय की बचत, या फिर ज़्यादा सस्ता खाना मिल पाना (इतने बड़े पैमाने पर बनने पर यह खाना थोड़ा

सस्ता तो हो ही जाता है)। खाना पकाने की इस प्रक्रिया में लगने वाला पानी गंदा होने की वजह से ही स्वास्थ्य संबंधीत दिक्कतें आती हैं। ये सारे लोग या तो म्युनिसिपालिटी के पानी पर निर्भर होते हैं या फिर और लोगों से खरीदते हैं। साथ ही, कचरा फेंकने के लिए या अन्य गंदगी की निकासी के लिए कोई सुविधा नहीं होती।''

''यह असंगठित भोजन उद्योग जहां एक ओर लाखों मज़दूरों को खाना मुहैया करवाता है, वहीं कई शहरी लोगों को रोज़गार भी दिलवाता है। अधिकांशतः पूरा परिवार इस काम में जुड़ जाता है -- पुरूष बाज़ार से खरीदने और बेचने का काम करते हैं और औरतें खाना पकाने के कई सारे काम में जुड़ी होती हैं। इस तरह कम लागत में ज़्यादा पा सकने के कारण, यह महत्वपूर्ण है।''

''इस क्षेत्र के प्रति समूचा दृष्टिकोण ही बदलना होगा। आज यह हमारी अर्थव्यवस्था में सबसे उपेक्षित क्षेत्र है। इसे बढ़ावा देने और इसका विकास करने के लिए कोई खास एजेन्सी गठित ही नहीं की गई है। लघु उद्योग विकास निगम, खादी ग्रामोद्योग निगम इत्यादि के ढांचों में इस उद्योग के लिए कोई स्थान नहीं है। फूड प्रोसेसिंग की तकनीकों मे किए जा रहे सुधार और बदलाव की ज़ानकारी तक इन लोगों को नहीं पहुंची है, तकनीकें तो दूर की बात है। जिन तकनीकों पर शोध किया गया है उनमें से कुछ हैं छोटे पैमाने पर संग्रह करने के ढां चे, झटपट बनने वाले 'मिक्स' (इडली, दोसा, वड़ा, गुलाबजामुन, जलेबी वगैरह), फलोंसे बनने वाली टॉफी, आलू के कई पदार्थ, इत्यादि। नए मंत्रालय के लिए यह ज़रूरी है कि वह इस क्षेत्र के विकास पर ध्यान दे और इसे विकसित करे। निम्न चीज़ें सुझाई गई हैं:

-- कुछ थोड़ा शुल्क लेकर, उन्हे साफ पानी उपलब्ध करवाया जाए।
-- म्युनिसिपालिटी और कॉरपोरेशन में जगह दिलवाकर उन्हें अपने ग्राहकों के पास रहने दिया जाए जो जायज़ भी है।
-- सार्वजनिक वितरण केन्द्रों से उन्हें अनाज, दाल, तेल, शक्कर इत्यादि जैसी चीज़ें वाज़िब दामों पर बेची जाएं।
-- कम पैसे में होने वाले कार्यों का उन्हे प्रशिक्षण दिया जाए और प्लास्टिक इत्यादि जैसी सस्ती चीज़ों के इस्तेमाल के बारे में भी जानकारी दी जाए।
-- संस्थानों से उन्हें आर्थिक मदद दिलवाई जाए। छोटे मोटे धंधे वालों को आज सूदखोरों से (लगभग 2% प्रति दिन के दर पर) मदद लेनी पडती है। ज़्यादा ब्याज देने के कारण फायदा तो कम हो ही जाता है। संस्थानों से कर्ज़ ज़्यादा अच्छे साधनों के लिए भी लिया जा सकता है। इससे ग्राहकों को भी बेहतर सामान मिलेगा और इन लघु उद्योग चलाने वालों को मदद।
-- इन उघोगों के लिए मददकारक शोधकार्य शुरू किए जाएं। जैसे कि, हाथठेलों की डिज़ाईन में ऐसा परिवर्तन जिससे वे हल्के हो जाएं, ऐसी साइकिलें जो ज़्यादा वजन

उठा सकें, दुकानों के फोल्डिंग ढांचे, कम उर्जा पर ज़्यादा सुरक्षित स्टोव्ह, बर्तन, संग्रह करने के लिए डब्बे, इत्यादि।

-- इन सब को संगठित करने से इनमें गलत, व झूठे दबावों के ख़िलाफ लड़ने का हौसला तो बढ़ेगा ही साथ ही, कर्ज़ लेकर, एक साथ कच्चे माल खरीद कर वे फायदा उठा सकेंगे।

लेकिन यह सब तभी हो सकता है जब उनके कामों को कानूनी दर्ज़ा दिया जाए। कम से कम लालफीताशाही के साथ उन्हें रजिस्टर करवाना चाहिए। उनके ऐसे संगठन बनाना चाहिए जो खुद के कार्य करने में सक्षम हों और आत्मनिर्भर हों।

कोओपरेटिव समितियों को विदेशी सहयोग की छूट

एक अख़बार की रिपोर्ट कहती है कि, ''नीति में हुए बदलाव के अनुसार, एक करोड़ से अधिक का व्यापार करने वाली कोओपरेटिवों को आसानी से विदेशी तकनीकों और अन्य सहयोग की छूट दी जाए। अब तक यह मेल जोल केवल बड़े निगम के लिए ही संभव था।''

कृषि पर बन रही विस्तृत नीति, जो कि आठवीं योजना के साथ घोषित की जाएगी, का यह एक हिस्सा है। फिलहाल यह नीति केबिनेट कमिटी के पास है।

इस नीति में ज़्यादा कार्यक्षम कृषि प्रोसेसिंग और बिक्री पर ध्यान दिया गया है ताकि कृषि में विकास तेज़ हो और ग्रामीण क्षेत्र में रोज़गार की संभावना बढ़े। फूड प्रोसेसिंग के महत्व को पहचानकर और कुछ कृषि संबंधित कोओपरेटिव के सफल होने के कारण ही योजना आयोग ने विदेशी सहयोग संबंधी यह मुद्दा जोड़ा है। आसानी से, लाइसेन्स की झंझट से बचकर यह अनुबंध करने की सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए सिर्फ फूड प्रोसेसिंग विभाग के साथ रजिस्ट्री ज़रुरी है। यह माना गया है कि बडे कोओपरेटिवों के पास छोटे किसानों के हितों को सुरक्षित रखते हुए बहुराष्ट्रीय कपनियों से समझौता करने की ताकत है। अगर बडे कोओपरेटिव की जगह और कोई यह मेलजोल चाहे तो स्वीकृति इस आधार पर दी जाए की उस की क्षमता क्या है और इस वक्त देश के निर्यात और शोध से जुड़े लक्ष्य क्या हैं।

फूड प्रोसेसिंग पोषण के दृष्टिकोण से

अधिकतर प्रोसेसिंग गैरज़रूरी होत्ता है और पोषक तत्वों को नष्ट भी करता है। रामचन्द्र (1982:141-147) का मानना है कि धान की सफाई से अधिकांश तत्व नष्ट हो जाते हैं। चावल की सफाई से जो पोषण हम खोते हैं उसकी कीमत 1970-77 तक के हमारे सालाना आयात से दुगने के बराबर होती है। और इस सफाई से 15 से 20 लाख टन प्रोटीन हम खो देते हैं। इस घाटे की भरपाई कृत्रिम तरीकों से नहीं की जा सकती। और वैसे भी पहले साफ करके निकालना, फिर कृत्रिम तरीके से जोड़ना, इस सब की क्या

तुक है, जब कि हमें पहले ही पता है कि सफाई करने से नुकसान ज़रुर होगा। उन गांवो में जहां दस साल पहले तक भी हाथ से साफ किया गया चावल खाया जाता था वहां भी आज मशीन से साफ किए चावल का चलन है। यहां तक कि बगैर पॉलिश का चावल कहीं मिल भी नहीं पाता। पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में यह सुझाया गया था कि इतनी चावल मिलें स्थापित हो सकती हैं, परंन्तु उनकी स्थापना की नहीं गई थी।

जानबूझकर मिलावट -- नमक का उदाहरण

निकालने के अलावा हमारे तथाकथित भले के लिए खाने मे कुछ रसायन जोड़े भी जाते हैं। एक उदाहरण है आयोडीनयुक्त नमक का, जो सरकार ने सब नमक बनाने वाली इकाइयों के लिए अनिवार्य कर दिया है। कुछ क्षेत्रों के लोगों पर आयोडीनयुक्त नमक थोपा जा रहा है जबकि ज़्यादा आयोडीन खाने पर उसके कुप्रभाव भी अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हो रहे हैं। सादा नमक कुछ समय बाद कहीं नहीं मिलेगा। अब तो सुन रहे हैं कि 'लौह मिश्रित' नमक भी लाया जाएगा। एक ग्राहक संगठन ने इस सरकारी नोटिस के खिलाफ मुकदमा दर्ज़ किया है। इस तरह की कार्यवाहियां ज़रुरी हैं।

कृषि पर असर

फूड प्रोसेसिंग को बढ़ावा इस आधार पर दिया जाता है की अतिरिक्त अन्न, फल इत्यादि इसमें इस्तेमाल हो जाएंगे। पर अब पेप्सीको के अध्यक्ष श्री वंगल का कहना है कि वे उनकी प्रोसेसिंग युनिट के लिए ठेके पर खेती करवाएंगे। इसका मतलब है कि इन बाग-बागानों में केवल उघोग में लगनेवाली चीज़ों की फसल होगी।

ये नई युनिट जहां लगी हैं उससे संबंधित लोगों का कहना है कि जल्द ही वहां एक किस्म की क्रांति होगी। एक तरफ तो यह कहा जाता है कि यह उद्योग बरबाद होती चीज़ों का उपयोग कर लेगा, और दूसरी ओर बड़े कारखाने लगाए जाते हैं जिनसे कई मज़दूरों की रोज़ी रोटी जुड़ी जाती है -- इसका मतलब यह है कि उन्हे चलाना ज़रूरी हो जाता है, अत: कच्चा माल लगातार मिलता रहना चाहिए। इसका मतलब है कि किसानों और इन कारखानों का एक अजीबोगरीब सा रिश्ता बन जाता है। इस रिश्ते पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं। ऐसे ही एक बिरले अध्ययन की रिपोर्ट प्रस्तुत है।

कृषिउद्योग -- मक्के की कहानी

विश्वव्यापी जागतिक भूख पर आयोजित एक सम्मेलन में कॉर्न प्रॉडक्ट्स कापासरेशन (CPC इव्टरनेशनल) ने पाकिस्तान के खाद्य पूर्ति में अपने जैसे एक विदेशी संस्थान के ऐतिहासिक योगदान के गुण गाए। यह कार्पोरेशन इसके उत्पादों के नाम से जाना जाता है जैसे मज़ोला कॉर्न ऑइल, स्किपी पीनट बटर, इत्यादि -- और 'कम विकसित देशों में' ये चिरपरिचित नाम हैं। इसीलिए कृषिउद्योग में हमारे भविष्य के लिए क्या निहित है, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है।

कंपनी जिस तरह से अपने अनुभव बताती है उसे दो तरीकों से समझा जा सकता है। भूख पर विजय वाला उनका जो तरीका है उसके अनुसार कहानी कुछ इस प्रकार है: सन 1962 में CPC International ने पाकिस्तान की मक्के के प्रोसेसिंग की सबसे बड़ी कंपनी रफहान मैज़ प्रोडक्टस को खरीद लिया। इस दशक के अंत तक U.S.AID और पाकिस्तानी सरकार से कर्ज़ लेकर रफहान काफी फैल चुकी थी। पर समस्या यह हो गई कि उसकी मिलों को ज़रूरी मात्रा में मक्का नहीं मिल पा रहा था। इसलिए जनवरी 1970 मे रफहान ने मक्का विकसित करने का कार्यक्रम शुरु किया। CPC ने तय किया कि वह अपनी संबद्ध कंपनियों से तकनीकी सलाह लेंगे और इस तरह से उन्होंने अपनी ही 'फंक सीड कंपनी' को एक ज़्यादा उपज देने वाली संकर नस्ल बनाने का जिम्मा सौंपा।

रफहान ने बड़े किसानों के साथ एक इकरारनामा बनाया। इसके तहत वे उधार पर किसानों को सही बीज, कीटनाशक और खाद इस शर्त पर देंगे कि पूरी फसल उन्हें मिले और कटने पर इन सब चीज़ों के दाम काट लिए जाएंगे। जो किसान इस प्रोग्राम में जुड़े उन्होंने राष्ट्रीय औसत उपज से औसतन दो गुना फसल उपजाई। साथ ही रफहान ने मक्के को छीलने, सुखाने और संग्रह कर रखने के लिए सुविधाएं बनाई। वे इतने सफल हुए कि उन्होंने अपने प्रोसेसिंग कारखाने को और बढ़ाने का फैसला किया।

सुनने में तो सब अच्छा है। पर इस सबको दोबारा, ध्यान से पढ़ना ज़रूरी है। CPC को ज़रुरी मात्रा में मक्का क्यों नही मिल पाया? कंपनी के ही अनुसार आम तौर पर पाकिस्तान में मक्का वह अनाज है जो दलित लोग और ग्रामीण इलाके के लोग खाते हैं। इस खाने को मान्यता इसलिए थी कि यह साल में कम से कम छह महिने आराम से काफी मात्रा में मिल पाता था। इसकी जगह जो दूसरे अनाज हैं -- गेहूं और चावल, उनसे यह काफी सस्ता भी होता है। किसान भी ग्रामीण क्षेत्रों मे इसका उपयोग करते हैं।

साठ के दशक में CPC के आ जाने पर मक्के के भाव तो बढ़ गए। साथ ही बड़े किसान भी पूरी तरह से मक्का उगाने में भिड़ गए। लेकिन फिर भी कंपनी के अनुसार, ''प्रोसेसिंग युनिट को मिलने वाले मक्के की मात्रा में ज़्यादा अंतर नहीं आया।'' कंपनी इसके तीन कारण देखती है: पहला, कि किसान ''अपना उपजाया हुआ बहुत सारा मक्का खा जाते थे'' या फिर ''उससे दूसरा अनाज खरीद लेते थे।'' दूसरा कारण यह कि जैसे जैसे गरीबों की संख्या बढ़ती जा रही थी वे सामूहिक रूप से ''ज़्यादा मात्रा में मक्का हजम कर गए।'' तीसरा यह कि पोल्ट्री उद्योग बढ़ने से मक्के की खपत उस क्षेत्र में भी बढ़ गई।

अपनी ज़रूरतानुसार मक्का प्राप्त करने के लिए रफहान ने नया इकरारनामा बनाया ''जिससे मक्का पैदाइश की पूरी प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन आ गया।'' आज मक्के की

खेती पर किसी भी किसान का जीवन निर्वाह नहीं होता। CPC कहती है कि ''पहले मक्के की खेती छोटे खेतों में भी होती थी। अब यह बड़े खेतों में होने लगी है।

जहां तक फसल को संग्रह करने की बात है,CPCके अनुसार इसके दो वैकल्पिक तरीके हैं। ''एक था कि किसान भुट्टे रखने के लिए छोटे छोटे नांद बनाएं। इसमें हवा के आते जाते रहने से अनाज सड़ता नहीं और तब तक रखा जा सकता है जब तक कि किसान उसे बेचना न चाहे।'' दूसरा जो रफहान ने चुना वह यह था कि, ''कटाई के समय ही किसानों से सारा अनाज खरीदकर उसे साफ कर, सुखा कर, कंपनी की ही टंकियों में भर कर रखा जाए।'' पर ये तरीका क्यों चुना गया? CPC के ही अनुसार पहले वाले तरीके में ''खामियां थी। एक तो यह कि रफहान को मक्का चाहिए था भुट्टा नहीं और सफाई की प्रचलित तकनीकें जो किसान के पास उपलब्ध थीं वे बहुत छोटी और धीमी थीं और कार्यक्षम भी नहीं थीं। दूसरी खामी इस तरीके में यह थी कि किसान अगर अपनी नांदो में अनाज रखते तो यह खतरा था कि वे कुछ अनाज किसी को दे डालते, या बेच देते या उसका किसी प्रकार इस्तेमाल कर लेते!''

इस तरह अपनाये गए तरीके से रफहान को अपना मक्का मिल जाता है। एक और परोक्ष फायदा यह है कि कटाई के समय सब अनाज खरीद लेने से कंपनी को ज़्यादा माल कम पैसे पर मिल जाता है क्योंकि उस वक्त किसान चाहते हैं कि सारा माल बेच दें।

इस तरह से 'सुधरी' हुई मक्के की खेती पाकिस्तान में आ गई है। एक समय पर जीवन निर्वाह कऐ लिए उगाया जाने वाला म ।अब केवल बड़े किसानों द्वारा उगाया जाता है। ये किसान भी बीज से टंकी तक की रफहान नियंत्रित प्रक्रिया में मात्र एक पुर्जा है।

और यह सब किस लिए? शीतल पेयों के बढ़ते बाजार में शक्कर की जगह इस्तेमाल किए जाने वाले एक 'मक्के से बने मिठास पैदा करने वाले' पदार्थ के रूप में।

एक विकासशील देश की कृषि में विदेशी निगम का आना, उस देश के भूखे, भूमिहीन या छोटे किसानों के लिए मददगार नहीं होता। जमीन और पानी जैसे प्राकृतिक साधन, मानव शक्ति और काफी सारी पूंजी सब इन विदेशी निगम और उनके देशी पार्टनर के मुनाफे के लिए खर्च हो जाते हैं। जो भूखे हैं उन्हें फायदा नहीं होता। भूखे होने पर भी वे यह खाना नहीं खाते (अगर वह खाने योग्य खाना हो तो भी)। वे इन पदार्थों को बेच भी नहीं सकते। अगर विश्व के बाज़ार की होड़ में इन वस्तुओं को बिकना हो तो यह ज़रूरी है कि मज़दूरी कम हो। उनके लिए काम कम है, मौसमी है और अन्य विकल्पों की तुलना में असुरक्षित भी। किसी समय के सस्ते पदार्थ, बाज़ार में अलग महत्व पा सिर्फ संपन्न लोगों की पहुंच में रह पाते हैं। कृषि उद्योग से कृषि और पिछड़ती है, नष्ट होती है।

एक बार संपन्न वर्ग देश का विकास कृषिउद्योग के पहिए पर बैठकर करना चाहे, तो सरकार को भी उसकी ज़रूरतें पूरी करनी होती हैं। एक स्वतंत्र आर्थिक एवं सामाजिक

नियोजन करना सरकार के हाथ में नहीं रहता। सरकार के हित और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित एक दूसरे में समा जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं। आखिर निगम से यह चेतावनी या धमकी तो हमेशा ही बनी रहती है, कि वे किसी और देश के कच्चे माल और जमीन की ओर मुंह फेर लेंगे।

''उपनिवेशवाद की विरासत पर पनपा बहुराष्ट्रीय कृषि उद्योग अभिजात्य वर्ग द्वारा नियंत्रित निर्यातान्मुखी कृषि का ही दूसरा नाम है।''

(जे.एम. लेप्पे और जे. कालिन्स: फूड फर्स्ट, बियोन्ड द मिथ ऑफ स्केरसिटी : NY, 1978, 317-319)

समापन

फूड प्रोसेसिंग के मुद्दे इतने विस्तृत हैं कि दिमाग गड़बड़ा जाता है। एक समय पर अनाज 'प्राकृतिक' रूप से उगता था याने कि कीटनाशक और जैविक खाद बगैर। इसमें प्राकृतिक बीज इस्तेमाल किए जाते थे जिन्हें फिर से बोने के काम में लाया जा सकता था। पर अब फसल उगाने की क्रिया में ही ऐसे परिवर्तन हो गए हैं कि खेती में लगनेवाला कच्चा माल पूरी तरह से बदल गया है। इनमें से एक है रासायनिक खाद का इस्तेमाल, जो खाने की प्रकृति ही बदल देता है।

इसी के समान कीटनाशक, जो कि अनाज में कुछ अंश में पाए जाते हैं और जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

संकर बीजों से कई फसलें ली जा रही हैं जिन्हें फिर से इस्तेमाल में नही लाया जा सकता। अब तो जिनेटिक टेक्नॉलॉजी से बीज बदलने की बात हो रही है। ज़रूरत है एक विस्तृत आंदोलन की जिसमें शोध और प्रत्यक्ष कार्यवाही कार्य दोनों हो। इससे हमें चाहिए कि नए विकास पर नजर रखें, खुद अपना शोध कार्य करें और ऐसे कार्यक्रमों को अपनाने का माहौल बनाएं जो आम इंसान के पोषण और स्वास्थ्य की ज़रुरतों को पूरा कर सके। ऐसा फूड प्रोसेसिंग जो प्रकृति के साथ तालमेल बनाए, उसके खिलाफ न जाए।

आखिरकार, मूल सवाल तो यही है कि 'अच्छे' फूड प्रोसेसिंग का परिप्रेक्ष्य क्या हो? इसका औरतों पर असर क्या होगा? हर किस्म के उपयोग को मद्देनज़र रख औरतों को कैसा परिप्रेक्ष्य विकसित करना चाहिए जो इन सब सवालों को ध्यान में रखे? मुद्दा सिर्फ रसोई में बढते कार्यभार-का नहीं है। ज़रुरत है कि हम जीवन, पोषण और स्वाथ्य की गुणवत्ता को भी जोड़ें, उन को सुधारने के बारे में भी विचार करें।

और शोध की ज़रूरत

भारत में फूड प्रोसेसिंग उद्योग का प्रभाव, उसमें औरतों की भागीदारी और इन सभी नए विकासों का हमारे जीवन पर असर -- इस सभी पर चर्चा की मात्र एक शुरूआत

इस कार्यशाला के लेखों द्वारा की गई है। इन सभी चर्चाओं के दौरान कई नए सवाल उभरे और हमें बार बार यह महसूस होता रहा कि इन सवालों की विविधता को पूरी तरह से समझने के लिए हमारा आज का ज्ञान काफी हद तक अधूरा है। यह आवश्यक है कि हम और गहराई से अध्ययन करें और ऐसी कार्यवाही करें जिससे इन नई तकनीकों के असर पर कुछ रोक लग सके।

औरतों पर अध्ययन करने वाले शोधकर्ताओं ने विशेष उद्योगों में औरतों के योगदान को महिला मज़दूरों के परिप्रेक्ष्य से देखा है। उनकी काम की परिस्थितियां, उनके साथ होता भेदभाव, औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्र के तहत उनके रोज़गार और दर्जे पर होते प्रभाव इ.। यह ज़रूरी मुद्दे हैं पर इनसे आगे जाने की ज़रूरत है।

प्रोसेसिंग करने पर खाद्य सामग्री का निर्यात तो बढ़ता है पर कच्चे माल के संग्रह पर इसका क्या असर रहा है? इससे हमारे भोजन और उनके दामों पर क्या असर पड़ा है? सरकार के अनुसार तो प्रोसेस्ड खाद्य सामग्री का निर्यात विदेशी मुद्रा हासिल करने का एक तरीका मात्र है। लेकिन इससे तो साधन एक वर्ग के लोगों के पास से छिन कर, दूसरे वर्ग के लोगों के कब्जे में चले जाते हैं। जैसे कि, मछली के निर्यात का मतलब यह हुआ कि सूखी हुई मछली कम मिलती है। सूखी मछली खाई जाती थी गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों द्वारा और उनकी प्रोटीन की ज़रूरतें पूरी करने में यह बहुत मददगार होती थी।

औरतें होने के नाते, हम क्या खाते हैं और अपने परिवारों को क्या खिलाते हैं यह बहुत महत्वपूर्ण रहा है। यह ज़रूरी है कि हम नए विकासों का मुआयना करें ताकि इनसे हमारे जीवन की गुणवत्ता कम न हो जाए। हमारी जीवनशैली और खाने की आदतों में परिवर्तन हो रहा है। पुराने ज़माने की तरह हम ताज़े और पौष्टिक खाने पर ज़ोर नहीं देते। जीभ को अच्छे लगने वाले तैयार प्रोसेस्ड भोजन और पेयों की मांग बढ़ती जा रही है।

हम एक नए नज़रिये की बात कर रहे हैं क्योंकि आज तक के अध्ययनों में से खाने की गुणवत्ता की बात परे रखी गई है। अगर घर में खाए जाने वाले खाने को देखा भी है तो औरतों की मेहनत कम करने और पुरूषों की भागीदारी बढ़ाने की दृष्टी से। ये दोनों महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। पर इसी दौरान उद्योग और खाने की प्रकृति में जो मूलभूत परिवर्तन हो रहे हैं उन्हे एक नए नज़रिये से देखना आवश्यक लगता है।

इससे मिलता जुलता उदाहरण है औरतों और प्रजनन का। पिछले बीस वर्षों में प्रजनन में हर किस्म का तकनीकी हस्तक्षेप हो चुका है। जो पहले हमें हमारे जीवन में सुधार लाते, अपने शरीर पर नियंत्रण की संभावना देते नज़र आए थे, उन्ही की वजह से जल्द ही ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि प्रजनन की पूरी प्रक्रिया में औरतें ही नदारद हो गईं हैं। उनकी जगह ले ली है हर किस्म की तकनीक ने — टेस्ट ट्यूब बेबी, लिंग जांच, लिंग

निर्धारण, कृत्रिम गर्भाधान -- न जाने क्या क्या ! एक प्राकृतिक प्रक्रिया बन गई एक तकनीकी चिकित्सा प्रणाली का आक्रमण। ऐसा ही कुछ आज फूड प्रोसेसिंग उद्योग में होता नज़र आता है।

इसी के साथ ही अन्य जटिल व संबंधित सवाल जो उठे वे थे औरतों के काम और समाज में उनके दर्जे से जुड़े। एक तरफ तो घर के काम में लगती ताकत और समय का यथार्थ था। अधिकतर काम बहुत थकानेवाला, और त्रासदाई होता है। उन पर मज़दूरी करने से आय भी बहुत कम मिल पाती है। परंतु उनसे खाने के पौष्टिक गुण ज़रूर बरकरार रखे जाते थे। जब हम उबाऊ और कठिन काम को हटाने की बात में भिड़ जाते हैं तो स्वास्थ्य और पोषण को प्राथमिकता नहीं दे पाते। आधुनिक खाद्य उद्योग में रत बड़ी कंपनियां विज्ञापनों द्वारा हमारे नहीं तो हमारे बच्चों के भोजन संबंधी विचारों पर ज़रूर असर करती हैं। आज उनकी मांग नींबूपानी की जगह थम्स-अप जैसे पेयों की है· फलों के रस की जगह फ्रूटी की है और पापड़ की जगह फ्रायम की है।

मिलावट भी आम होती जा रही है। इसलिए यह और भी ज़रूरी हो रहा है कि खाना लोगों के लिए हानिकारक भी न हो और साथ में एक पोषक आहार देने योग्य हो। प्रोसेसिंग की प्रक्रिया के दौरान कई सारे पौष्टिक तत्वों के नष्ट होने की संभावना है। कई बार ये प्रक्रियाएं खाना सुरक्षित रखने के लिए ज़रूरी नहीं होती। सिर्फ रंग रुप बदलने के लिए और कई मर्तबा सिर्फ इसलिए की जाती हैं कि उस दौरान निकलने वाले दूसरे पदार्थों के इस्तेमाल में लोगों की रूचि होती है। एक उदारहण है चावल मिल का जहां मशीन से साफ किए हुए चावल में से अधिकतर प्रोटीन और विटामिन नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही अन्य सफाई की प्रक्रिया से प्राकृतिक पदार्थों में मिलने वाले ज़रूरी रेशे निकाल दिए जाते हैं।

हम खाने को किसी भी प्रकार के प्रोसेसिंग के खिलाफ हैं ऐसा कतई नहीं है। हम तो यह मानते हैं कि सदियों से खाने के साथ ये प्रक्रियाएं की जा रही हैं। लेकिन आज जिस तरह से यह होने जा रहा है, उस पर ग़ौर करना ज़रूरी है। साथ ही हम औरतों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम यह परिभाषित करने में भी सक्रिय रहें कि हमें क्या चाहिए, किस रूप में और किस तरह से। अगर हम यह चाहते हैं कि फूड प्रोसेसिंग से हमें और समाज को फायदा हो तो हमें और सक्रिय हो कर यह तय करने में हिस्सेदारी करनी होगी कि हम चाहते क्या हैं। औरतों के परिप्रेक्ष्य से हम ऐसे बदलाव चाहेंगे जिनसे हमारी मेहनत तो कम हो पर साथ ही खाने की गुणवत्ता बनी रहे, वह पौष्टिक हो और स्वास्थ्य या पर्यावरण के लिए हानिकारक भी न हो। साथ ही ऐसे बदलाव जो गरीबी की समस्या से भी जूझें और रोज़गार भी कम न करें। दूसरे शब्दों में हम एक 'अनुरूप व अनुकूल' फूड प्रोसेसिंग उद्योग की खोज में है।

हमें प्रश्न भी पूछने ज़रूरी है। यह सारी प्रक्रिया किसके लिए? हमारे देश में 40% लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं याने कि 40% को दो जून रोटी तक नसीब नहीं होती। क्या इस बढ़ते उद्योग से इस विषमता को कम करने में मदद मिलेगी? या फिर यह साधनों को आम लोगों के नियंत्रण से निकाल, ज्यादा महंगा बना शहरी अमीर वर्ग और निर्यात के लिए ही उपलब्ध करवा रहे हैं? क्या सरकार ज़रूरतमंद लोगों के लिए ताज़ा फल और सब्जी का इंतज़ाम करवा सकती है? दूध से बनने वाले उत्पादनों के कारण आज गांवो में बच्चों के लिए भी दूध नहीं मिल पाता। सवाल यह है कि क्या सच में यह उद्योग केवल उन चीज़ों का इस्तेमाल करता है जिनके बरबाद होने का डर है? या फिर इसके बहाने कच्चे माल के उत्पादन को ही पूरी तरह नियंत्रित करता है?

महत्वपूर्ण मुद्दा यह भी है की फूड प्रोसेसिंग से कृषि प्रक्रियाओं और भूमि के इस्तेमाल में क्या परिवर्तन हो रहे हैं। क्या ज़्यादा ज़मीन ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में लगाई जा रही है जिनकी उद्योग को ज़रूरत है और जिनके लिए ज़्यादा कीमत और सुरक्षित बाज़ार मिल सकता है? इसी के फलस्वरूप कहीं ज़रूरी वस्तुओं का उत्पादन तो कम नहीं हो रहा? दाल और दलहन के उत्पादन में कमी शायद इन मूलभूत कारणों से ही आई है।

और सबसे अंत में पर्यावरण। इतना अधिक अनाज कैसे पैदा हो पाया? इसके लिए पानी, ज़मीन, खाद, कीटनाशकों को कैसे इस्तेमाल किया गया? पर्यावरण पर इनके दूरगामी प्रभाव क्या हो सकते हैं?

इन सवालों के जवाब पाने के लिए और शोध व अध्ययन की ज़रूरत है। हमें आशा है कि इस पुस्तक में उठाए गए मुद्दों द्वारा, इस ज़रूरी विषय में अधिक रूचि उत्पन्न होगी और चर्चा अधिक विस्तृत और गहरी होगी।

फूड प्रोसेसिंग में मशीनीकरण और औरतें

फूड प्रोसेसिंग -- बंगाल का ऐतिहासिक अनुभव

मुकुल मुखर्जी

विकास संबंधी दस्तावेजों से एक बात साफ होती है कि औद्योगीकरण का औरतों और समाज में उनके स्थान पर गहरा असर होता है। 19 वीं सदी के यात्रियों के सफरनामों से, सरकारी पत्रिकाओं से और जनगणना के आंकड़ों से फूड प्रोसेसिंग में औरतों की भागीदारी और उनके काम की विविधता का अहसास होता है। मिसाल के तौर पर धान की सफाई का उद्योग देखें तो यह साफ है कि शुरूआत में यह काम औरतें ही किया करती थीं। जब 20 वीं सदी की शुरूआत में मिलों का चलन बढ़ा तब बड़े पैमाने पर औरतें विस्थापित हुईं।

पूर्वी भारत के बंगाल जैसे प्रदेश में धान सफाई की मिलों की बढ़ती तादाद और इससे इस रोज़गार से वंचित होती औरतों की स्थिति का एक ऐतिहासिक ब्यौरा मुकुल मुखर्जी ने अपने लेख में दिया है। औद्योगीकरण से होती तथाकथित प्रगति के असर का उन्होंने कई आयामों से अध्ययन किया है।

उनका कहना है कि पहले औरतें हाथ से धान की सफाई कर पैसे कमाती थीं। उनकी इस आय पर उनके छोटे खेतीहर परिवार निर्भर थे। मशीनों के आने पर इस आमदनी के छिन जाने का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष असर इन छोटे किसान परिवारों पर पडा है। आर्थिक रूप से तो असर हुआ ही पर और भी अलग तरह से मशीनीकरण का प्रभाव पड़ा। जैसे कि पहले मजदूरी धान के रूप में दी जाती थी। इस कारण खाने के लिए कर्ज़ नहीं लेना पड़ता था। हाथ से चलाई ड़ेक्खी से धान में से ज़्यादा चावल प्राप्त होता था। मशीन के आ जाने से गरीब वर्ग के लिए प्रति व्यक्ति उपलब्ध चावल की मात्रा ज़रुरतसे कम हो गई। इसके अलावा मशीन से कूटे गए धान में पौष्टिक तत्व भी कुछ कम होते हैं।

इन मुद्दों को उभार कर मुकुल मुखर्जी यह सवाल सामने रखते हैं कि आखिर इसे कैसे रोकें ? क्या ऐसी भूमिका ली जा सकती है कि नियोजन ऐसा हो कि मशीनीकरण पूर्णतः

बंद हो जाए ? यह एक तरह से असंभव है क्योंकि नियोजन तो उस वर्ग के हाथ में है जिसे मशीनीकरण से फायदा होता है। तो फिर किस दिशा में सोचें ? मशीनीकरण को पूरी तरह से नकारें या ठीक तरह से तरीकों के चयन की मांग करें? इस सबके लिए मुकुल मुखर्जी के अनुसार यह ज़रूरी है कि गांव की गरीब औरतों को आत्मनिर्भर बनाया जाए। इसके लिए उन्हें धान की खेती से संबंधित हर प्रक्रिया का प्रशिक्षण दिया जाए। कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा ऐसे प्रशिक्षण की शुरूआत की गई है। पर इसका फायदा औरतें कम उठा पाती हैं। इन केन्द्रों में सिर्फ 15% प्रशिक्षणार्थी औरतें हैं। इसके अलावा मुकुल मुखर्जी आशा व्यक्त करते हैं कि स्थानिय आवश्यकताओं को मद्देनज़र रख सुझाया जा रहा विकेन्द्रीकृत ढांचा आगे चलकर इन सब मुद्दों पर कुछ हासिल कर सकेगा।

मशीनीकरण का धान मिलों में कार्यरत औरतों पर प्रभाव

रूबी ओझा

मशीनीकरण के कारण परंपरागत पेशों से हाथ धोती औरतों का गहराई से अध्ययन किया है रूबी ओझा ने। धान सफाई के उद्योग की मिसाल लेकर 1955 मे धान मिल समिति के अवलोकन पर उन्होंने अपने विश्लेषण को पुख्ता बनाया है। समिति ने स्पष्ट कहा था कि, 'जहां कच्चा माल सीमित मात्रा में उपलब्ध हो और जहां मानवशक्ति ज़्यादा हो, वहां मशीनीकरण कोई खास मायने नहीं रखता।' दूसरी बात वे कहती हैं कि मशीन की जगह हाथ से सफाई करने पर ज़्यादा चावल प्राप्त होता है और हाथ से कूटे धान का चावल काफी हद तक ज़्यादा पौष्टिक भी होता है।

इसके अलावा हाथ से सफाई खेत के पास की जाने से यातायात का खर्च बचता है और मशीन की बनिस्बत इसमें पूंजी भी काफी कम लगती है। हर तरह से हाथ से कुटाई ही ज़्यादा फायदेमन्द लगती है।

सभी योजना आयोगों और सरकारी कार्यक्रमों ने हाथ से सफाई की प्रक्रिया को मशीनीकरण से बेहतर करार दिया है। इसके लिए मुख्य कारण रहे हैं -- विशेषतः ग्रामीण औरतों के लिए रोज़गार उपलब्धि, ज़्यादा चावल की प्राप्ति और बेहतर पौष्टिक तत्व। इन सब के बावजूद मशीनों ने हाथ से होने वाली सफाई के काम को पूरी तरह से खत्म कर दिया है। रूबी ओझा ने इस संदर्भ में सरकार की आलोचना की है। साथ ही, अपनी ही समितियों के प्रस्तावों के बावजूद मशीनीकरण रोकने हेतु कार्यवाही न कर पाने के लिए, सरकार को ज़िम्मेदार भी माना है।

चावल में पौष्टिकता (प्रति 100 ग्राम चावल)

तत्व	कच्चा चावल		पारबाइल चावल	
	हाथ से कुटा	मिल से कुटा	हाथ से कुटा	मिल से कुटा
नमी (ग्रा.)	9.60	9.70	12.60	13.30
प्रोटीन (ग्रा.)	7.30	6.90	8.50	6.40
वसा (ग्रा.)	1.20	0.50	0.60	0.40
कार्बोहायड्रेट (ग्रा.)	80.10	82.10	77.40	77.70
रेशे (ग्रा.)	0.70	0.20	-	-
खनिज पदार्थ (ग्रा.)	1.10	0.80	0.90	0.80
कैल्शियम (ग्रा.)	13.0	10.0	10.0	10.0
फास्फोरस (मि. ग्रा.)	132.0	87.0	280.0	150.0
लौह (मि. ग्रा.)	2.8	2.2	2.8	2.2
थायमीन (मि. ग्रा.)	0.21	0.11	0.27	0.21
रिबोफ़्लावीन (मि.ग्रा.)	0.10	0.06	0.12	0.09
निकोटिनीक आम्ल (मि. ग्रा.)	2.50	1.00	4.00	3.80

प्रचलित सरकारी योजनाओं की खामियां देखकर उन्होंने धान संबंधित इस उद्योग में औरतों के लिए खास सुविधाएं उपलब्ध कराने की मांग की है। जैसे की औरतों की कोओपरेटिव के माध्यम से उन्हें इस उद्योग में वेतनदाय काम प्राप्त हों, उन्हे कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में और कम कीमत पर उपलब्ध हो, हाथ से साफ किए गए धान की खपत सरकारी संस्थानों में अधिक से अधिक हो और इस के लिए दाम भी ज़्यादा प्राप्त हों।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग में निजि और सार्वजनिक संगठित क्षेत्रों में औरतों का रोज़गार

दिव्या पांडे

अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में औरतों के रोज़गार की स्थिति में सुधार लाने के बहुत वादे किए गए थे। परंतु यह लगातार देखा जा रहा है कि परंपरिक रूप से जो औरतों के रोज़गार माने गए हैं उनसे जुड़े संगठित क्षेत्र के उद्योगों में औरतों का रोज़गार या तो घटता जा रहा है या उसमें नाममात्र वृद्धि हो रही है। सरकारी आंकड़ों से ही इस बात की पुष्टि करने की कोशिश की है दिव्या पांडे ने।

रोज़गार मार्केट जानकारी (एम्प्लॉयमेंट मार्केट इन्फर्मेशन, इ. एम्. आइ.) कार्यक्रम के तहत नियमित रूप से उद्योगों से यह जानकारी इकट्ठी की जाती है कि उनके यहां कितने पुरूष व स्त्री कामगार हैं, कितने और किस तरह के कामगारों की और ज़रूरत है, इत्यादि। इन आंकड़ों में घर पर काम करने वाले, पार्ट टाइम काम करने वाले, कृषि से जुड़े उद्योग व छोटे उद्योग (जिनमें दस से कम कामगार हों) के आंकड़े शामिल नहीं किए जाते। इसके अलावा सभी उद्योगों की गणना भी शायद हर केन्द्र नहीं कर पाता। इन सीमाओं को मद्देनज़र रख दिव्या पांडे ने इन आंकड़ों से फूड प्रोसेसिंग उद्योग में महिलाओं के रोज़गार के बारे में कुछ निष्कर्ष निकाले हैं।

1976 से 1983 तक इस उद्योग में कुल रोज़गार 24.63% बढ़ा है पर महिलाओं का रोज़गार सिर्फ 2.53% बढ़ पाया है। महिलाओं के कुल रोज़गार का एक चौथाई हिस्सा फूड प्रोसेसिंग उद्योग से जुड़ा है। इसमें भी अधिकांश औरतें काजू के प्रोसेसिंग से जुड़े उद्योगों में हैं। सार्वजनिक और निजि क्षेत्रों में रोज़गार की स्थिति अलग ही है। डेअरी और मांस प्रोसेसिंग उद्योगों को छोड़, हर उद्योग में निजि शेत्र में काम करने वाली औरतों की संख्या सार्वजनिक क्षेत्र से ज़्यादा है। 1983-84 में कुल महिला कामगारों में से 77.35% निजि क्षेत्र में और 22.65% सार्वजनिक क्षेत्र में काम करती थीं।

1975 से लेकर 1984 के आंकड़ों को देखकर एक अजीब बात सामने आ जाती है। नीचे तालिका में सिर्फ उन दो सालों के आंकड़े दिए गए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में रोज़गार लगातार बढ़ता रहा है जबकि इन उद्योगों के निजि क्षेत्र में उतार चढ़ाव आते रहे हैं। पर इन दो सालों की तुलना से यह तो स्पष्ट है कि स्त्रियों का रोज़गार निजि क्षेत्र में तो कम हुआ है और सार्वजनिक क्षेत्र में सिर्फ नाममात्र ही बढ़ पाया है।

क्षेत्र	1975-76 कुल रोज़गार (हज़ार में)	1975-76 महिला रोज़गार (हज़ार में)	1975-76 महिला रोज़गार (प्रतिशत)	1983-84 कुल रोज़गार (हज़ार में)	1983-84 महिला रोज़गार (हज़ार में)	1983-84 महिला रोज़गार (प्रतिशत)
निजि	459.3	121.9	26.54	499.9	113.6	22.72
सार्वजनिक	83.9	32.3	38.49	143.4	32.9	22.94

यह भी स्पष्ट है कि कुल रोज़गार के अनुपात में महिला रोज़गार दोनों ही क्षेत्रों में घटा है। सार्वजनिक क्षेत्र में जहां कुल रोज़गार इस दौरान 70.92% से बढ़ा है वहां महिला कामगार सिर्फ 1.86% ही बढ़ पाई हैं। दिव्या पांडे कहती हैं कि काम देते वक़्त ही एक किस्म का पक्षपात किया जाता है जिसको और समझने के लिए और सुधार पाने के लिए और गहराई से अध्ययन की भी ज़रूरत है।

फूड प्रोसेसिंग में टेक्नॉलॉजी के स्तर और उनका औरतों के रोज़गार पर प्रभाव

मीरा सवारा

इसी प्रश्न के संदर्भ में मीरा सवारा ने कुछ चुने हुए खाद्य पदार्थों और उनके उत्पादन और बेचने की जगहों का अध्ययन किया। उत्पादन के स्तर का उन्होंने जो वर्गीकरण किया है वह इस प्रकार है — घर की रसोई में, सड़क पर, हाथठेले या लारी पर, दुकान में और कारखाने में।

उनका कहना है कि इन में से सड़क और दुकान के स्तर पर महिलाएं बिल्कुल नहीं हैं और कारखानों में भी वे कुछ खास काम ही करती नज़र आती हैं। उन्होंने पाया है कि जहां उत्पादन प्रक्रिया घर से कारखाने तक ले जाने पर उत्पादन की मात्रा और उससे होने वाले फायदे में बहुत बढ़त होती है, वहीं औरतों का रोज़गार कम होना नज़र आता है और साथ ही घर के अंदर काम करनेवाली औरतों की संख्या भी बढ़ती दिखाई देती है। इसके साथ ही इस तरह से तैयार खाने में पौष्टिकता भी कम होती नज़र आती है।

इस परिस्थिति में उनका सुझाव है कि यदि औरतों के संगठन और संस्थाएं फूड प्रोसेसिंग उद्योग में जुड़ें, तो रोज़गार, साफ सफाई और पौष्टिक खाने, सभी का ख्याल रखा जा सकता है। बंबई के 15 संगठनों के कार्य की इस दृष्टी से उन्होंने समीक्षा की है। उनके अनुसार ये संगठन सिर्फ समाजकार्य के रूप में काम कर रहे हैं जो कि काफी नहीं।

बेसहारा औरतों को काम देना अनिवार्य है पर अगर बाज़ार में कारखानों से टक्कर लेनी है, तो इन औरतों को तकनीकी प्रशिक्षण और बुनियादी शिक्षा दिलवाना भी निहायत ज़रूरी है।

	उत्पादन का स्तर	वस्तु	औरतों को रोज़गार
1.	घरेलू स्तर की टेक्नॉलॉजी	सूखी मछली, पोषण पूरक, भोजन सुविधा, तैयार खाना, पापड़	मुख्यतः औरतें
2.	दुकान के स्तर पर	नमकीन, मिठाईयां, ब्रेड, भोजन सुविधा (महिला संगठन)	महिलाएं नदारद औरतों द्वारा
3.	खोमचा के स्तर पर	तैयार खाना	औरतें नदारद
4.	कारखाने (मशीनीकृत)	ब्रेड, सूखी चीज़े, तैयार खाना	औरतें नदारद

मीरा सवारा ने एक मॉडल भी पेश किया है, ज़िला स्तर के इस तरह के संगठनों को राज्य स्तर तक जोड़ते एक केन्द्रीय संगठन का। इस के तहत काम तो घर के स्तर पर हो पर उत्पादित वस्तुओं की क्वालिटी संभालना, कच्चा माल खरीदना, तैयार माल बेचना, ज़रूरी प्रचार करना ये सारे काम केन्द्रीय संगठन के द्वारा किए जाएं। एक स्पर्धात्मक बिक्री व्यवस्था में औरतों के टिके रहने के लिए इस तरह के विकेंद्रीत, केन्द्रीय ढांचे की बहुत अहमियत होगी और इसका एक विस्तृत विवरण मीरा सवारा ने दिया है।

केस स्टडीज़

फूड प्रोसेसिंग में औरतें: बिना मूल्य काम

नीरा देसाई

आज के औघोगीकरण के ढांचों को देखकर यह स्पष्ट है कि गरीब और शोषितों -- उसमें भी खास करके औरतों -- के रोज़गार की स्थिति को समझने पर ही इस 'विकास' को सही मायने में समझा जा सकता है। अधिक मुनाफा पाने के लिए, लोगों को अमानवीय माहौल में और अनैतिक परिस्थितियों में 'अनौपचारिक क्षेत्र' के तहत काम देना, यह आज के उद्योग का जाना माना व्यापारिक दांव है। काम देने वाले की ज़िम्मेदारियां कम से कम हो और लेने वाले की मजबूरी और हालातों का पूरा पूरा फायदा उठाया जाए -- यही आज के विकसित उद्योगों की मुख्य नीति है। औरतें, जो कि कामगारों के रूप में आंकड़ों में जोड़ी नहीं जाती, वे इस तरह के 'अनौपचारिक क्षेत्र' में सबसे ज़्यादा काम पाती हैं।

नीरा देसाई ने अपने लेख में इसी बात को उजागर करते हुऐ यह समझने का प्रयत्न किया है कि क्यों औरतें इस तरह के ही काम करने को मजबूर हैं। उनकी गिनती आंकड़ों में तो नहीं ही होती, पर काम के स्वरूप के कारण उन्हें घर और समाज में भी एक कमाऊ व्यक्ति का दर्ज़ा नहीं दिया जाता। घर और बाहर की दोहरी ज़िम्मेदारी के बावजूद उनकी अपनी पहचान नहीं बन पाती।

नीरा देसाई ने चार तरह के उघोगों में काम करने वाली औरतों को लेकर अध्ययन किया। ये हैं पापड़ बनाना, अचार बनाना, मसाला बनाना और मछली प्रोसेसिंग। शहरीकरण और मध्यम वर्ग की ज़रूरतों को मद्देनज़र रख इन सब उद्योगों में काफ़ी परिवर्तन आए हैं। पर यह स्पष्ट है कि बढ़िया से बढ़िया मशीन और तकनीक आने पर भी औरतों के काम का बोझ बिल्कुल कम नहीं होता। उन्हें वही थकाऊ उबाऊ कूटने और पॅक करने और घंटों खड़े रहकर चीज़ें छांटने जैसे काम मिलते हैं। इन सबसे उनके स्वास्थ्य पर होने वाले असर पर तो कोई ग़ौर नहीं करता।

औरतें, अन्य तरह के काम न मिल पाने के कारण, यही काम पूरी आस्था और लगन से करती हैं। सालों तक नौकरीपेशा लोगों को मिलनेवाले फायदों से वंचित, इन्हें न तो प्रमोशन मिलता है, न बीमारी के लिए छुट्टी, न पगार में बढ़ोतरी। ऐसे में प्रसूति के लिए छुट्टी और पालनाघरों का इंतजाम तो सोच के दायरे से भी दूर है। जब धंधे का मौसम हो, जैसे गरमी में पापड़ का, तब तो खाने की छुट्टी तक नहीं मिल पाती। ऐसी परिस्थिति में काम करना सुखदायी तो हो ही नहीं सकता।

एक महत्वपूर्ण मुद्दा जो नीरा देसाई इस संदर्भ में उठाती हैं वह यह है कि फिर आखिर इस तरह के काम से एक स्तर की आर्थिक सहायता के अलावा और क्या मिलता है। उनका मानना है कि इन सब कठिनाइयों के बावजूद इन्हीं आधुनिक तकनीकों के बदौलत, औरतें चारदिवारी से बाहर निकल कर काम कर रही हैं, एक दूसरे के साथ जाति-धर्म के बंधन छोड़ काम द्वारा दोस्ती बना रही हैं -- एक हद तक खुले सामाजिक वातावरण में जी रही हैं। अध्ययन के दौरान जिनसे बात हुई उनमें से अधिकतर औरतें इस 'फायदे' को पहचानकर भी अपने हालातों और अपने साथ होती नाइंसाफी से काफी हद तक वाक़िफ़ लगीं। अपनी मज़बूरी और परिस्थति को बदलने में अपनी सीमाओं को पहचान, वे आज यह ज़रूर मानती हैं कि उनकी लड़कियां अगर कुछ पढ़-लिख जाएं और कोई हुनर हासिल कर लें, तो रोज़गार के बाज़ार में उनका मूल्य और ताकत ज़रूर एक अलग किस्म के होंगे।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग में औरतें

सुरिन्दर जेतली

परंपरागत रुप से औरतें ही खाद्य पदार्थों के प्रोसेसिंग का काम करती रही हैं। डिब्बे बंद खाने का चलन शुरू हुआ युद्ध की ज़रुरतों के लिए। इस उद्योग में आज औरत की मौजूदा स्थिति का अध्ययन किया है सुरिन्दर जेतली ने। दुनिया भर में इस उद्योग में औरतें काफी तादाद में काम करती हैं। पश्चिमी विकसित देशों की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करने के लिए और वहां हर तरह से मशीनीकरण से निपटने के लिए, आज के नए साम्राज्यवादी समीकरणों के अनुसार, उन देशों से श्रम प्रधान उघोगों को विकासशील देशों की ओर भेजा जा रहा है। यहां चूंकि मजदूरी कम लगती है इसलिए उद्योग फायदे में रहते हैं। यहां भी सबसे कम वेतन पर काम करने को तैयार होती हैं अशिक्षित, अप्रशिक्षित औरतें। इस कारण से आज औरतों को सबसे ज़्यादा इसी तरह के कम वेतन वाले काम मिलते हैं।

सुरिन्दर जेतली ने स्त्रियों के रोज़गार की एक ऐतिहासिक समीक्षा की है। उनके अनुसार अंग्रेज़ी कारखानों से आती वस्तुओं के सामने यहां के स्थानीय दस्तकार नहीं टिक सके। यहां भी उद्योग डले और लोग अपने व्यवसाय छोड़ उनमें जुड़ने लगे। इसमें सारी औरतें सिमट गई सिर्फ दो उद्योगों में -- कपडा और फूड प्रोसेसिंग। 1971 के आंकड़ों के अनुसार 40% औरतें ऐसे उद्योगों में थी जिनमें 70% मज़दूरी औरतें करती थीं। साथ ही आमदनीवाले काम करनेवाली औरतों में से 4/5 घर पर ही काम करती थीं।

निर्यात किए जानेवाले उत्पादन तैयार करना यह फूड प्रोसेसिंग उद्योग का मुख्य उद्देश्य है। इसमें अधिकतम मुनाफा पाने के लिए ही औरतों को काम दिया जा रहा है। नज़ारा कुछ यों लगता है कि औरतों के काम का अर्थ ही कम टेक्नॉलॉजी, कम उत्पादन, कम वेतन हो जाता है (UNCTAD)। अधिकतर औरतें इसीलिए अनौपचारिक क्षेत्र में ठेके पर काम करती हैं।

इसी स्थिति को बेहतर समझने के लिए सुरिन्दर जेतली ने एक राज्य के 5 ज़िलों की सारी फूड प्रोसेसिंग युनिट में काम करने वाली स्त्रियों के साथ एक अध्ययन किया। घर में होने वाले भेदभाव की वे सब शिकार थीं और इस कारण से बग़ैर किसी शिक्षण या हुनर के ही काम करने को मजबूर हैं। ये सब औरतें घर और बाहर का दोहरा बोझ संभाल कर 48 से 60 घंटे प्रति सप्ताह अस्थाई नौकरियां करती हैं।

उन्हें न छुट्टी मिलती है न अन्य सुविधाएं -- यहां तक कि टॉयलेट का इंतज़ाम भी नहीं होता। फिर समान काम के लिए पुरूषों की अपेक्षा कम वेतन मिलता है।

चूंकि फल और सब्ज़ी से जुड़े उद्योग मौसमी हो जाते हैं, इसलिए सरकार ने एक किस्म से यहां पर ठेकेदार पद्धति का नियमन करने की कोशिश की है, पर वह औरतों के हित में कोई काम नहीं कर पाई है। सुरिन्दर जेतली का मानना है कि जब तक वे संगठित हो कोई ठोस कदम नहीं उठातीं, तब तक इस स्थिति में से उबरना मुश्किल है। इसके लिए उन्हें किसी न किसी पितृसत्तात्मक आधिपत्य के तहत जीने के तरीके से बाहर निकलना होगा।

आज कहीं कहीं ये सारे प्रयास हो रहे हैं। इसमें सुरिन्दर जेतली के दो मुख्य सुझाव हैं। एक तो यह कि सही तरीके से उन औरतों को प्रशिक्षण मिले और दूसरा यह कि जो बहनें बेहतर स्थिति में है, पढ़ी लिखी हैं वे जानकारी और अन्य मदद देकर इन उद्योगों में कार्यरत औरतों की मदद करें।

खान-पान उद्योग में रोज़गार की स्थिति

ललिता अय्यर

हमारे कुल औद्योगिक उत्पादन का 19% उत्पादन फूड प्रोसेसिंग द्वारा होता है। आज बढ़ती ज़रूरतों के साथ इस उद्योग में नए किस्म की युनिट और उत्पादन जोड़े जा रहे हैं। ज़ाहिर है इस सबका रोज़गार पर बहुत असर पड़ सकता है। ललिता अय्यर ने इसी स्थिति का मुआयना करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया है कि इस उद्योग में ग्रामीण क्षेत्र के लोगों, खास करके महिलाओं, को रोज़गार दे सकने की क्षमता है। बहरहाल आज की स्थिति काफी खराब है।

मौसमी उद्योग होने के कारण इस उद्योग में अस्थाई नौकरी ही मिल पाती है और खास करके औरतों को ना तो प्रमोशन मिलते हैं और ना ही आगे बढ़ने के खास मौके। अधिकतर काम निजी क्षेत्र में ही मिल पाता है। कम शिक्षावाली, निचले वर्ग और पिछड़ी जातियों की ये औरतें मजबूरन ना तो युनियन में जुड़ पाती हैं और ना ही न्यूनतम मज़दूरी पाने के लिए अड़ सकती हैं। इनके लिए हर किस्म की सुविधाएं नहीं के बराबर हैं और तिस पर सामाजिक रूढीयों से भी उनके रोज़गार पर बंधन आते हैं। जैसे कि मांस के पदार्थों के उत्पादन में औरतें बहुत कम काम करती हैं। वैसे भी वे सबसे ज़्यादा संख्या में सबसे कम हुनर लगनेवाले कामों में जुड़ती हैं जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट है।

फूड प्रोसेसिंग के विभिन्न कामों में औरतें (प्रतिशत) - 1971-76

वर्ष	कुल महिला कामगार	सहायक (हेल्पर) %	छंटाई-बिनाई %	काटना-छीलना %	प्रोसेस करना %	भराई %	मुरब्बा बनाना %	रस बनाना %	पॅक करना %
1971	261	3.83	5.36	61.3	5.75	3.07	1.53	7.28	11.88
1972	325	4.62	4.31	70.45	-	2.46	1.54	4.62	12.0
1973	179	8.38	7.82	50.29	-	4.47	6.70	6.70	15.64
1974	275	4.73	7.64	58.17	-	2.91	6.55	6.55	17.45
1975	328	5.18	5.49	66.16	-	2.13	5.49	5.49	12.50
1976	311	5.47	5.14	61.74	-	2,57	6.11	6.11	16.08

इसी सब का अध्ययन ललिता अय्यर ने दिल्ली में स्थित तीन युनिटों में जा कर किया। वहां औरतों को उनके नम्र स्वभाव, समय की पाबंदी, काम में लगन और ट्रेड यूनियन में भाग न लेने के कारण ज़्यादा संख्या में नौकरी दी जाती है। पुरूष मजदूरों को यहां भी ज़्यादा वेतन मिलता है हालांकि न्यूनतम मज़दूरी तो किसी को भी नहीं मिलती है।

ललिता अय्यर ने इन सब दिक्कतों से निपटने के लिए जो कुछ ज़रूरी कदम सुझाए हैं, वे इस प्रकार है: इस उद्योग में कार्यरत औरतों के बारे में और जानकारी इकट्ठी की जाए; इस तरह के उद्योग में प्रशासकीय दिक्कतें कम की जाएं; महिलाओं को अधिक क्रियाशील करने के लिए कुछ उत्पादन के लिए सामूहिक सुविधाएं मुहैया करवाई जाएं; उनके उत्पादित पदार्थों को बेचने के लिए खास बिक्री केन्द्र शुरू किए जाएं। सबसे ज़्यादा ज़रूरी लगता है ऐसा प्रशिक्षण जिसके सहारे औरतें शुरू से ही ज़िम्मेदारी व कौशल वाले रोचकतापूर्ण व ऊंचे कामों पर लगें। इस सब दूरगामी बदलाव के साथ ही उन्हें यह ज़रूरी लगता है कि सरकार अपने ही द्वारा बनाए गए कानूनों को लागू करने की पूरी कोशिश करे।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग और स्व-रोज़गार प्राप्त औरतें

ललिता कृष्णस्वामी

फूड प्रोसेसिंग उद्योग में कई सारे काम ऐसे भी हैं जो छोटे पैमाने पर, बग़ैर ज़्यादा पूंजी लगाए, घरों में ही किए जा सकते हैं। घर में ही रोज़मर्रा के कामों में से ही किसी एक काम को थोडे व्यापक स्तर पर कर के 'घर बैठे' ही व्यवसाय चलाने का काम औरतें अक्सर करती हैं। ना तो ऐसे काम करने वालों की गिनती जनगणना के आंकड़ों में आती है और ना हीं वे खुद अपने परिश्रम का सही मेहनताना ले पाती हैं। अहमदाबाद में इसी तरह से अलग-अलग काम करने वाली बहनों के साथ किए गए अध्ययन पर आधारित है ललिता कृष्णस्वामी का यह लेख।

उन्होंने इस तरह से कमानेवाली दो औरतों के जीवन और काम का पूरा ब्यौरा लिखकर, इनसे जुड़े प्रश्नों को उभारने की कोशिश की है। सुबह से रात तक भिड़े रहकर और अपने अनूठे, अनुभवजन्य तरीकों से वे अपने कठिन जीवन जीने में सफल होती हैं। इन औरतों की मजबूरी और बेबसी का अंदाज़, ललिताजी के उनसे बात करने के अनुभव से भी स्पष्ट है। यह पता लगने पर कि ये सारे प्रश्न पूछने का उद्देश्य उन्हें तत्काल कोई मदद देना नहीं है, दोनों ही औरतों ने बात करने में रूचि नहीं बताई।

ललिता कृष्णस्वामी ने इस संदर्भ में 'सेवा' जैसे संगठन के प्रयास का भी ज़िक्र किया है। कचरा बीनने वाली औरतों के साथ 'सेवा' ने ऐसे कोओपरेटिव बनाने की कोशिश की है जो खाद्य सामग्री बनाने और परोसने का काम हाथ में लें। इन प्रयासों को और पुख़्ता बनाने के लिए और इस क्षेत्र में आ रही दिक्कतों से जूझने के लिए ललिता कृष्णस्वामी के सुझाव कुछ इस प्रकार हैं: राष्ट्रीय और कोओपरेटिव बैंकों से औरतों के लिए खास लोन सुविधाएं, कुछ खास मशीनीकरण की प्रक्रियाओं को तकनीकी सहायता, उद्योग चलाने के लिए लगने वाला सारा प्रशिक्षण और इस तरह के काम से स्वास्थ्य की तकलीफों के निराकरण के लिए विशेष शोध कार्य।

बड़ी कंपनियां और फूड प्रोसेसिंग -- औरतों के लिए संभावनाएं और दिक्कतें

जे. एन. मेहरोत्रा

बाकी लेखों से कुछ हट कर विचार व्यक्त किए हैं श्री मेहरोत्रा ने। बढ़ते औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण फूड प्रोसेसिंग के उत्पादनों की मांग शहरों में बढ़ रही है। साथ ही गांव से शहर की ओर हो रहे इस बदलाव के कारण परंपरागत तरीकों और कार्यों का चलन कम हो रहा है। ऐसे में श्री मेहरोत्रा का कहना स्वाभाविक है कि विशेष ब्राण्ड वाली चीज़ों की खपत बढ़े। उनके अनुसार इस नई स्थिति में 'ब्राण्ड' ही एकमात्र पहचान का तरीका होता है।

बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए उन्हें लगता है कि बड़ी कंपनियों का आना तो रोका नहीं जा सकता। इस स्थिति में श्री मेहरोत्रा के अनुसार इन बड़े उघोगों में स्त्रियों के रोज़गार और सहकारी परियोजनाओं को किस तरह जोड़ा जाए और वे किस तरह साथ साथ अपने मकसदों को पूरा कर पाएं, इस दिशा में सोच की ज़रूरत है।

इसके लिए उनके सुझाव कुछ इस प्रकार है: कुछ हद तक मशीनीकरण जो रोज़गार कम किए बगैर उत्पादन बढ़ा सके; स्त्रियों के कोओपरेटिव को ठेके पर बड़ी कंपनी से काम; देश भर में फैले कोओपरेटिव जो औरतों को तनख़्वाह के साथ मुनाफे में भी हिस्सा दें; साथ ही फैला हुआ उत्पादन होने के कारण वितरण खर्च भी कम किया जा सकता है।

श्री मेहरोत्रा इस सुझाव के साथ आने वाली समस्याओं का भी ज़िक्र करते हैं। जैसे कि लघु उद्योग होने के कारण इस तरह के उत्पादन को कई किस्म की रियायतें न मिल पाना या फिर महिलाओं के समूहों के पास पर्याप्त पूंजी एवं ज़रूरी हुनर भी न होना। वे

कहते हैं कि इन दिक्कतों को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए, इनसे निपटने के मार्ग ढूंढना आवश्यक है।

वे स्पष्ट रूप से यह भी कहते हैं कि बड़ी कंपनी चाहे देशी हो या बहुराष्ट्रीय, उनके आने से रोज़गार बढ़ेगा जिसमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए सतर्क रहना ज़रूरी है। इसके लिए हमें मांग करनी चाहिए कि ज़्यादा महिलाओं को अपने घरों के पास ही काम दिया जाए और उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने में मदद की जाए।

पोषण और ग्राहक की दृष्टिसे फूड प्रोसेसिंग

फूड प्रोसेसिंग का पोषण पर असर

पी. वी. सुखात्मे

अक्सर यह माना जाता है कि ज़्यादा मात्रा में और कई किस्म का खाना खाने से पोषण ज़्यादा मिल पाता है। साथ ही यह भी माना गया है कि भोजन की एक न्यूनतम औसत मात्रा है जो हर व्यक्ति को मिलनी चाहिए। यह मात्रा आम तौर पर लिंग, व्यक्ति के वजन और उसके काम के स्वरूप व दिनचर्या पर आधारित मानी गई है। इन्हीं मान्यताओं की एक सशक्त आलोचना करते हुए श्री सुखात्मे ने यह देखने की कोशिश की है कि हमारी मूलभूत मान्यताओं में ही किस तरह के बदलाव ज़रूरी हैं।

खाने से प्राप्त ऊर्जा के मुख्यतः तीन उपयोग हैं -- शरीर का वजन बनाए रखना, शारीरिक श्रम संभव करना और खाने से उष्मा प्राप्त करना। अब तक यह माना जाता रहा है कि समान वजन वाले, एक समान काम करने वाले व्यक्तियों को लगभग एक समान मात्रा में उर्जा की ज़रूरत होती है। पर और गहराई से अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि इस मात्रा में काफी विविधताएं है। जो उर्जा खर्च होती है वह एक रेंज में होती है। इस रेंज में (जो एक वयस्क इंसान के लिए 2100 kcal से 3500 kcal तय की गई है) भोजन लेने पर शरीर की अंदरूनी प्रक्रियाएं अपने आप को इस प्रकार ढाल पाती हैं कि उतने ही से ज़रूरतानुसार पोषण प्राप्त कर लें।

प्रति व्यक्ति उर्जा सप्लाई व ज़रूरत की तुलना (1972-74) किलो कॅलरी

	सप्लाई	ज़रूरत
विकसित देश	3,380	2,500
विकासशील देश	2,210	2,300

स्रोत: चतुर्थ विश्व खाद्य सर्वेक्षण

जैसे जैसे ज़्यादा मात्रा में भोजन लिया जाता है, वैसे उर्जा बरबाद होने की मात्रा बढ़ती जाती है। शरीर की प्रक्रियाएं कम कार्यक्षम हो जाती हैं। इसी बात को और स्पष्ट करते

हुए श्री सुखात्मे कहते हैं कि विकसित देश के लोग ज़्यादा खाते है, ना सिर्फ इसीलिए कि उनकी ज़रूरत ज़्यादा है पर इसलिए भी कि वहां की सामाजिक आदत ज़्यादा खाने की है और इसीके साथ वे ज़्यादा खाना बरबाद भी करते हैं।

उनके अपने प्रयोगों से श्री सुखात्मे ने पाया कि कुछ ही समय में शरीर कम उर्जा में भी कार्यक्षम रहना सीख जाता है। यह तालमेल व्यक्ति किस तरह बिठा पाते हैं यह सिर्फ उनके जिनेटिक ढाँचे पर निर्भर न हो कर, काफी हद तक उनके सामाजिक, आर्थिक माहौल पर भी निर्भर है। इसीलिए एक औसत मात्रा निकालना और उसके अनुसार नीतियां बनाना, काफी भ्रामक हो सकता है। इस औसतन मात्रा को मद्देनज़र रख, वास्तविक से ज़्यादा लोगों को कुपोषित बता कर, सरकार अपनी नीतियों का फायदा उन लोगों को दे रही है जो कि अभावग्रस्त तो हैं परंन्तु शायद उस रेंज लायक भोजन तो कर ही सकते हैं।

अक्सर यह माना जाता है कि कम पोषण मिलने के कारण ही इस इलाके के लोगों का कद छोटा हो गया है। श्री सुखात्मे का कहना है कि यह पूरा सत्य नहीं है। अक्सर बचपन में ही जिस तरह की बीमारियों का सामना करना पड़ता है, उनके भी कारण कद छोटा रह जाता है। यह तो खुशनसीबी है इंसानों की कि एक हद तक कम खाने का शरीर जिस तरह आदी हो जाता है। शरीर के अभ्यस्त होने की ही एक अभिव्यक्ति है कद ज़्यादा न बढ़ना। याने कि कम खाने से शरीर पर होने वालो अन्य किसी हानि से बचने के लिए, शरीर अपना ही तरीका अपनाता है, कद कम रख कर ज़रूरतें सीमित रखने का।

मुद्दा यह है कि कुछ लोगों कि बढ़ती मांगों के कारण दुनिया के सभी लोगों को खतरा है। अगर हम इस तरह उर्जा को फिर से उपयोग में न आनेवाली उर्जा में बदलते रहे तो जल्द ही हमारे सारे साधन इन्हीं मांगों को पूरी करने में खप जाएंगे और ज़रूरतें बिल्कुल भी पूरी नहीं हो पाएंगी। वैसे भी आज की स्थिति में गरीबों को अपनी थोड़ी कमाई का बड़ा सा हिस्सा खाने पर खर्च करना पड़ रहा है।

इस स्थिति में से उबरने के लिए ज़रूरी है कि गरीब संगठित हों और एक दूसरे की मदद करें। इसके लिए श्री सुखात्मे ने 'इंदिरा सामूहिक रसोई' का उदाहरण दिया। बस्ती के ही लोगों में से कुछ को चुनकर ना सिर्फ उन्हें रोज़गार देने का प्रयोजन किया गया बल्कि सस्ता, पौष्टिक खाना बेचकर अन्य गरीब लोगों को भी इससे फायदा हुआ। इसके साथ ही लोगों के रहने की जगह को साफ सुथरी रख कर भी उन्हें बीमारी से संरक्षण मिल सका। इस तरह के प्रयासों के साथ साथ ही श्री सुखात्मे का सुझाव है कि दूध और डेयरी से जुड़े उद्योग के सही मायने में विकास से गरीबों को फायदा हो सकता है।

उनका मुख्य मुद्दा यही बनता है कि पोषण की एक गलत समझ के आधार पर हममें से वे लोग, जो इस क़ाबिल हैं, ज़्यादा भोजन को ज़्यादा पोषण मान बैठे हैं। इस कारण एक तरफ तो अनुपयोगी उर्जा की मात्रा बढ़ रही है और दूसरी ओर गरीब तबके के

लोगों की न्यूनतम ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं और सारे प्राकृतिक साधनों की मात्रा भी दिन-ब-दिन घटती जा रही है। गरीबी, कुपोषण इत्यादि से निपटने के लिए एक तो गरीबों को साथ आकर एक दूसरे की मदद करनी होगी और दूसरे दुनिया भर के अमीर वर्ग के लोगों को अपनी मांगो को नियंत्रित करना होगा।

फूड प्रोसेसिंग और पोषण

जी सुभलक्ष्मी

हमारे खाने में से लगभग 95 प्रतिशत वस्तुओं पर कोई न कोई प्रक्रिया की जाती है। कई वर्षों से घरेलू स्तर पर यह काम किया जा रहा है। परंतु अब शहरीकरण, बढ़ती आबादी और घर से बाहर काम करती मध्यम वर्ग की औरतों के कारण ये सारे काम एक उद्योग का रूप अख्तियार कर रहे हैं। तैयार खाने के उद्योग की ही बात करते हुए सुश्री सुभलक्ष्मी ने इस पूरे उद्योग को तीन भागों में बांटा है -- प्राथमिक प्रोसेसिंग, घर पर या लघु उद्योग के स्तर पर होने वाला और बड़ी उद्योग कंपनियां।

सुभलक्ष्मी के अनुसार फूड प्रोसेसिंग मुख्यतः इसीलिए किया जाता है कि अनाज सड़ न जाए, पोषक तत्वों को बचा कर रखने में मदद मिले, हानिकारक चीजें हटाई जा सकें, उसी खाने में और पोषक तत्व मिलाए जा सकें, तैयार खाना प्राप्त हो सके, कई सारे फेंके जाने वाले पदार्थों का उपयोग किया जा सके, तैयार खाना प्राप्त हो सके, कुछ खास बीमारियों या कुपोषण की रोकथाम में मदद मिले, मौसमी वस्तुओं का पूरा उपयोग किया जा सके, निर्यात को बढ़ावा मिले और घरों में बहुत समय लेने वाले काम कम हो जाएं।

इस उद्योग को पिछले दशक में काफी बढ़ावा मिला है परंतु फिर भी अभी और बढ़ने की संभावना है। सुभलक्ष्मी का कहना है कि किसी भी किस्म के प्रोसेसिंग से, चाहे वह घर में हो या बाहर पोषक तत्वों का नुकसान तो होता है किन्तु जब यह प्रोसेसिंग कारखानों में होता है, तब यह नुकसान कुछ कम मात्रा में होती है और ज़्यादा संपूर्ण पोषण मिल पाता है। इसके साथ ही कई बार प्रोसेस्ड खाने में से पोषक तत्व को ग्रहण करना शरीर के लिए आसान हो जाता है। इसके अलावा कृत्रिम रुप से खाने में विटामिन इत्यादि डालकर उसे ज़्यादा पौष्टिक बनाया जा सकता है। बढ़ते हुए कुपोषण की जड़ तो अभाव में है पर विशेष किस्म से प्रोसेस्ड खाने से इससे निपटने में सहायता मिल सकती है।

सुभलक्ष्मी के अनुसार पूर्ण जानकारी न होने के कारण इस तरह के प्रोसेस्ड खाने की सुरक्षा पर सवाल उठ सकते हैं। जैसे की सिंथेटिक रंगों का इस्तेमाल। अगर केवल वे ही रंग (चाहे वे प्राकृतिक हो या सिंथेटिक) इस्तेमाल किए जाएं, जो कि सुरक्षित हों, तो इस दिक्कत को भी दूर किया जा सकता है। उनका सुझाव है कि इस सबसे बचने के लिए यह ज़रूरी है कि सभी उत्पादनों पर उस पदार्थ से जुड़ी सारी जानकारी दर्ज़ की जाए, जैसे कि उसके पोषक तत्व, एक्सपायरी डेट, उससे जुड़ी सावधानियां, इत्यादि। इससे ग्राहक को सही चयन करने में आसानी होगी।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग और उपभोक्ता

उमा पटेल

आज के बदलते सामाजिक यथार्थ और सोच पर एक टिप्पणी करते हुए उमा पटेल कहती हैं कि पश्चिम के देखादेखी आज हम भी खाने को सिर्फ पोषण और स्वास्थ्य के लिए नहीं लेते। स्वाभाविक है कि हमारा झुकाव तैयार, 'इंस्टंट फूड' की ओर हो रहा है। उनका मानना है कि यह स्वाभाविक ही है कि किसी भी प्रकार की ऐसी प्रक्रिया से जो खाने के रंग, रूप, स्वाद, इत्यादि में परिवर्तन करे, खाने के पोषक तत्व कम होंगे। प्रोसेसिंग से खाना उपलब्ध तो हो रहा है पर पोषण कम दे पा रहा है और इस पर ग़ौर कोई नहीं करना चाहते। एक उपभोक्ता होने के नाते उनके संगठन का मकसद है कि ग्राहकों को ना सिर्फ पोषण के संदर्भ में जानकारी दें, बल्कि इस सारी प्रक्रिया से स्वास्थ्य पर हो रहे कुपरिणामों से भी सूचित करें।

उद्योग चलाने वाले मुनाफा चाहते हैं, पोषक खाना देना नहीं। वैसे ही रसायनों के इस्तेमाल से काफी हानि हो चुकी है। जैसे टमाटर पकाने के लिए इस्तेमाल किए गए रसायनों के कारण उनमें 'विटामिन सी' की मात्रा कम हो गई है। पर अब नए तरीकों में है: विकिरण याने गामा किरण, क्ष किरण, इत्यादि उपचार। विकिरित खाद्य पदार्थ जल्दी नहीं सड़ते। मगर इस तरीके का एक खतरा यह है कि इसकी मदद से सड़े हुए पदार्थों को दुरूस्त करके बेचा जा सकता है और वैसे भी ये किरणें अपने आप में हानिकारक हैं। इसी तरह से खाद्य या पेयों को ज़्यादा समय तक टिकाने के लिए डाले गए कुछ रसायनों के शरीर पर दूरगामी परिणाम निश्चित हैं।

थोड़ा आगे चलकर कीटनाशकों के खाने पर होने वाले असर पर भी ध्यान देना ज़रूरी लगता है। गेहूं, चावल, दालें, मछली, मांस, दूध, घी, मख्खन इ. सभी में कीटनाशकों के कुछ अंश पाए गए हैं। एक आम भारतीय रोज़ाना करीब 0.27 मि.ग्रा. D.D.T. खाने

के साथ ग्रहण करती/करता है। हमारी पेशियों में लगभग 12.8 से 31.0 मि.ग्रा. D.D.T. जमा है जो कि संसार के किसी भी देश से ज़्यादा है। यह ज़रूरी है कि खाने में इन कीटनाशक के अंश खत्म किए जाएं।

उमा पटेल इस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हैं कि आज के फूड प्रोसेसिंग उद्योग उत्पादनों पर ठीक से जानकारी के लेबल नहीं लगाते। ग्राहकों का यह हक़ है कि वे जो पदार्थ ले रहे हों उसकी पूरी जानकारी उन्हें मिले। इस उद्योग से ग्राहकों को कोई फायदा तो होता नहीं अलबत्ता कम पोषक और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक खाने के रूप में घाटा बहुत होता है। इसीलिए एक उपभोक्ताओं के संगठन होने के नाते हम सरकार से यह मांग करते हैं कि वह इस उद्योग को और बढ़ावा न दें।

संगठन कार्य और संगठन

अन्नपूर्णा महिला मंडल -- नेतृत्व का विकास

वृन्दा पै

यह लेख है जनसामान्य महिलाओं को संगठित करने के अन्नपूर्णा महिला मंडल के प्रयास के बारे में। ये महिलाएं स्व-रोज़गार प्राप्त हैं और घर से ही ज़रूरतमंद लोगों को खाना पहुंचाने का काम करती हैं। इस संगठन की सदस्यता लगभग 50,000 है और ये अधिकतर मिल मजदूरों की पत्नियां हैं। अन्नपूर्णा की शुरूआत क़ाबिले-ग़ौर है। मज़दूर आंदोलन के बढ़ते दबाव के कारण, महिला मज़दूरों के हक़ों के लिए कानून बनाए गए जिनके तहत मिल मालिकों को उन्हें खास सहूलियतें मुहैया करवाना आवश्यक हो गया। नतीजतन मिल मालिकों ने औरतों को कामही देना बंद कर दिया जिससे लगभग 4,500 औरतें बेकार हो गईं। अपने घर से ही काम करने के लिए इन्होंने गांवों से आए हुए मजदूरों के लिए खाना बनाने का काम शुरू किया। जहां यह खाना मिलता है, वह जगह खानावल कहलाई। यही औरतें आज अन्नपूर्णा के साथ जुड़ी हैं।

अन्नपूर्णा महिला मंडल के कारण ये औरतें सूदखोरों के शिकंजे से छूट पाई हैं। मंडल का मुख्य उद्देश्य रहा है कि औरतों को कम ब्याज पर कर्ज़ मिल सके और वे सरकारी स्कीमों का फायदा उठा सकें। एक सुनियोजित ढांचे के अनुसार संगठन का काम किया जा रहा है। अन्नपूर्णा महिला मंडल कई सारे छोटे संगठनों का, जिनकी सदस्यता 10-15 औरतों की ही है, एक फेडरेशन सा है। किसी भी गुट को मंडल से मान्यता मिलने से पहले सारे सदस्यों को मंडल के कार्य संबंधी प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें भी ज्यादा ज़ोर इस पर होता है कि कर्ज़ कहां कैसे प्राप्त हो, उसमें क्या दिक्कतें आ सकती हैं, वापसी किस्तों के लिए क्या किया जाए, इत्यादि।

ज्योती संघ

सरला शाह

ज्योति संघ अहमदाबाद का संगठन है। महिलाओं को जोड़ने के इनके प्रयासों में सामाजिक प्रश्न ही प्रमुख रहे और इन्हीं के बारे में सोचते हुए महिलाओं की आर्थिक निर्भरता की बात सामने आई। औरतों की आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास मूक बात हैं, यह पहचानकर ज्योति संघ ने खाद्य उद्योग में प्रवेश किया।

ज्योति संघ के आर्थिक रोज़गार कार्यक्रमों में से खाद्य उद्योगों पर ग़ौर किया है सरला शाह ने इस लेख में। किस तरह के काम किए गए और उनमें कैसी दिक्कतें आईं। सरकारी या अर्धसरकारी जगहों पर काम प्राप्त करने के लिए बड़े निजि उद्योगों के साथ टक्कर लेनी पड़ी। काफी बहस और चर्चा के बाद ऐसे नियम बन पाए जिनके अनुसार कुछ सरकारी संस्थानों पर यह बंधन डाला गया कि वे केवल महिला संगठनों को ही कैंटिन इत्यादि का काम दें। उनका कहना है कि अगर ज़्यादा जगह मिल पाती, और मजदूरों पर लागू होने वाले कानून उनके जैसी सेवाभावी संगठनों पर ही न लादकर प्राइवेट उद्योग पर भी लागू किए जाते, तो ज़्यादा बढ़ पाना संभव होता।

एक और मुद्दा जो उन्होंने उठाया है, वह है मशीनीकरण का -- इस उद्योग के संबंध में औरतों के अनुभव। जैसे कि मशीन के आने की वजह से हाथ से मिर्च-मसाले कूटने के काम से औरतें वंचित हो गईं। यहां भी उनका कहना है कि वे पूरी तरह से मशीनीकरण के खिलाफ नहीं हैं। ज़्यादा कष्टदाई काम और ऐसे काम जिनमें एक खास गुणवत्ता बनाए रखाना ज़रूरी है वहां यंत्रों का लगना ज़रूरी है जैसे पापड़ का आटा गूंधने के यंत्र का तो स्वागत है। पर बेलने के काम को यंत्रों से करने की कोई ज़रूरत उन्हें महसूस नहीं होती।

शहरी अनौपचारिक फूड प्रोसेसिंग उद्योग में स्त्रियों की स्थिति -- वर्तमान और भविष्य

एस. के. जी सुंदरम

श्री सुंदरम ने अपने लेख में यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि सरकार क्यों इस उद्योग को ज़्यादा बढ़ावा दे रही है। उनका मानना है की सरकार की दिलचस्पी की कई वजह हैं, जैसे कि ज़्यादा लोगों को रोज़गार दिलवाने की संभावना, कच्चे माल का आसानी से मिलना, जल्दी खराब हो सड़ने वाली फल सब्ज़ी का कुछ उपयोग, इत्यादि। इसके साथ ही काम की जगह के चयन में और काम करने के घंटों में मिलनेवाले खुलेपन और छूट के कारण शहर की औरतों की इस तरह के कामों में भागीदारी भी आसानी से मिल पाती है।

उन्होंने इस उद्योग में औरतों की परंपरागत भागीदारी और इसमें आने वाली दिक्कतों से निपटने के अनूठे तरीकों का ज़िक्र काफी विस्तार से किया है। इस कार्य में सहायक स्त्री संगठनों का भी ज़िक्र किया गया है। श्री सुंदरम का मानना है कि इस सबके बावजूद औरतें संगठित क्षेत्र की बिक्री व्यवस्था और उत्पादनक्षमता के साथ स्पर्धा नहीं कर पातीं। इसके मुख्य कारण जो उन्होंने पहचाने हैं, वे हैं आधुनिक टेक्नॉलॉजी की जानकारी का अभाव, जगह की कमी, हर किस्म के प्रोसेसिंग की कमी। इन्हीं कारणों से औरतों का इस उद्योग में शोषण भी बहुत होता है। खुद सरकारी संस्थानों से -- बैंक, म्युनिसिपालटी, इत्यादि से -- भी अड़चनें पैदा होती हैं।

इस स्थिति में सुधार के लिए श्री सुंदरम के सुझाव हैं कि इन औरतों को और उनके संगठनों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों से बचाने के लिए कानूनी संरक्षण देना ज़रूरी है। इसके अलावा प्रशिक्षण और अन्य सहयोग, जिससे ताकतवर संगठन बने और ऐसी सहकारी संस्थाएं बनें जिनसे शहरी गरीब औरतों को अपना रोज़गार कमाने का मौका उपलब्ध हो।

फूड प्रोसेसिंग उद्योग में औरतों को संगठित करने के अनुभव

शारदा साठे

गेहूं, चावल, दूध, मक्खन, अंडे, मूंगफली और शक्कर सभी में अधिक से अधिक उत्पादन होने के बावजूद खाद्य उद्योग में भारत की कोई ज़्यादा प्रगति क्यों नहीं है इस मूलभूत सवाल से शारदा साठे ने लेख शुरू किया है। ये सारे पदार्थ इस उद्योग में बहुत ज़रूरी हैं पर सही तकनीकों का इस्तेमाल न होने के कारण विकास ज़्यादा नहीं है। कुल रोज़गार कम है और महिलाएं तो और भी कम क्योंकि उनकी ठीक से गिनती भी नहीं हो पाती। वैसे भी उन्हें काम भी छोटी युनिटों में ही मिलता है जहां मशीनीकरण सबसे कम हो पाया हो। इसके अलावा जिन जगहों पर कानूनन न्यूनतम मजदूरी एक्ट से छूट हो वहीं उन्हें काम मिलता हैं।

इस संबंध में शारदा साठे ने पापड़ बनाने वाली महिलाओं को संगठित करने के एक प्रयास का ब्यौरा दिया है। औरतों की इच्छा होने के बावजूद, कई बाधाओं के कारण यह प्रयास नाकामयाब रहा। जिस बस्ती में रहते हैं, उसी में काम करना, वहीं मीटिंग होना, घरवालों से पडता परोक्ष अपरोक्ष दबाव, उनके आत्मविश्वास के विरोध में काम करते सारे ताने बाने, काम पाने के लिए सुपरवाइर पर निर्भर होना -- इन सारे कारणों की वजह से व्यापक समझ के साथ संगठन न बन सका। इसी से जुड़े सवालों को शारदा साठे ने स्पष्ट किया है, जिनका मुख्य ज़ोर है कि इस खास किस्म के उद्योग में काम करने वाली औरतों के संगठन के लिए कोई अलग ढांचा बनाया जा सकता है क्या? इस प्रश्न पर सभी के साथ चर्चा करना उन्हें ज़रूरी लगता है।

आगे उनका कहना है कि खेती की शुरूआत से खाना, परिवार और समाज ये एक त्रिकोण के तीन कोण हैं और बीच में है औरत। इस त्रिकोण के बाहर भी वह वेतनदेय काम करने को मज़बूर है। बाहर के नए विश्व में उन्हें अपने परंपरागत कामों के लिए पुरूष मज़दूरों से जूझना पड़ रहा है। वे स्पष्ट कहती हैं कि वे ना तो उद्योग के खिलाफ हैं और ना ही इस बात पर ज़ोर देना चाहती हैं कि मालिक भारतीय उद्योगपति हों या बहुराष्ट्रीय कंपनियां। उन्हें यह समझना ज़्यादा जरूरी लगता है कि इस सबसे औरतें अपनी मुक्ति के लिए क्या फायदा उठा सकती हैं।

ऐतिहासिक तौर से औरतों के उद्योग कहलाए जानेवाले उघोगों में उन्हें एक समानता दिखती है, चाहे वह कपड़ा मिल हों या और कुछ। सभी में मशीनों के आने से औरतें परंपरागत भूमिका से बाहर निकल पाई हैं और समानता के विचार भी व्यक्त कर पाई हैं। इसीलिए शारदा साठे का मानना है कि औद्योगिकरण से शोषण हो यह अनिवार्य नहीं। आज के माहौल में इन उद्योगों को औरतों और मजदूरों के हित में कैसे उपयोग में लाया जाए इस बारे में महिला और मजदूर संगठनों ने विचार करना चाहिए।

सरकारी योजनाएं और नीतियां

सरकारी योजनाएं और नीतियां

इ. आर. रति

इ. आर. रति मैसूर में केंद्रीय खाद्य टेक्नॉलॉजी शोध संस्थान में काम करती हैं। उन्होंने सरकार कि उस नीति पर ग़ौर किया है जो फूड प्रोसेसिंग में लगी औरतों से संबंधित है। वर्तमान स्थिती में घर के स्तर पर फूड प्रोसेसिंग की पद्धति, अविकसित टेक्नॉलॉजी के कारण निष्फल है। टेक्नॉलॉजी के बारे में उन्होंने विश्लेषण किया है। प्राचीन पद्धति, माल पैक करने के पुराने तौर तरीके, और सफाई की कमी। इस सभी में काम बंटवारा होता है। पारंपरिक और आधुनिक पद्धतियों में धान उपजता है गांवो में लेकिन उस धान की प्रोसेसिंग की प्रक्रिया होती है शहरों में, जहां बड़ी-बड़ी फॅक्टरियों में ये काम होता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओं के कारण और एक विभाजन होता है -- शहरी और ग्रामीण। टेक्नॉलॉजी की प्रगति का असर विभिन्न स्तरों की महिलाओं पर अलग-अलग होता है। आम समझ है की टेक्नॉलॉजी लैंगिक आधार पर भेदभाव नहीं करती। लेकिन विशिष्ट विभागोंके सांस्कृतिक वास्तवों के कारण टेक्नॉलॉजी प्रस्थापित करती है। लिंगधिष्ठीत समाज के मूल्यों को औरतों के पारंपारिक कामों से दूर किया जाता है।

जैसे शहरी खरीददार पालिश किए हुए चावल लेना पंसद करते हैं। हालांकि यह कम पौष्टिक होता हैं। यह चावल आज प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। कंपनियां बिक्री के लिये जो नीतियां अपनाती हैं उनका असर ग्राहकों की मानसिकता पर होता है, और पारंपारिक उत्पाद पर संकट आता है।

दूध योजना 'ऑपरेशन फ्लड' के उदाहरण से उन्होंने यही बताया है। दूध व दूध से बने पदार्थों की बिक्री गांवों में हुआ करती थी। ज़्यादा दूध का इस्तेमाल दही इ. पदार्थों के लिये किया जाता है। अभी गांवों से दूध इकट्ठा हो कर शहर के उद्योग केन्द्र पर इकट्ठा होता है ताकि दूध को ठीक तरह से पैक कर के मार्केट में ले जाया जा सके। इस नीति और योजना का परिणाम यह होता है कि जो पदार्थ कम भाव पर गांववालों को उपलब्ध

होते थे, वे अब महंगे पडते हैं जिन्हें खरीदना ग्रामवासियों के लिये नाममुकीन सा है। नतीजतन गांववाले दूध और दूध से बने पदार्थों से वंचित हो गये हैं।

स्त्रियों की सामाजिक और लैंगिकता पर आधारित भूमिका को उन्होंने चार हिस्सों में अच्छे से विभाजित किया है -- पत्नि, माता, घर बनानेवाली और कामगार। जो भी उपभोग की वस्तु आयी है, जैसे कि ग्राइंडर, मिक्सर, इ., उनके इस्तेमाल से काम की तीव्रता कम हुई होगी, लेकिन उन्हें चलाने का काम औरतों का ही मान कर स्थापित स्त्री-पुरूष भेदभाव की समझ को पुख़्ता ही बनाया गया है। गांव की स्त्रियों का पारंपरिक काम उद्योग ने छीन लिया है। औरतों के ऊपर उसका असर हुआ है, क्यों कि मूल्य देनेवाला काम औरतों से ज़्यादा पुरूषों के हक में होता है।

विज्ञान का टेक्नॉलॉजी से संबंध गहरा है। विज्ञान की पश्चिमी परंपरा के आधार पर टेक्नॉलॉजी विकसित हुई है, जो भारतीय परिस्थितियों में असरकारक नहीं होती। स्थानिय प्राकृतिक प्रोसेसिंग और समाजिक यथार्थ से यह टेक्नॉलॉजी जुड़ नहीं सकती। भारत के वैज्ञानिकों का विश्व क्रम में तीसरा स्थान है, लेकिन यहां कि परिस्थितियों से इन वैज्ञानिकों का कोई रिश्ता नाता नहीं है। जो वैज्ञानिक भारत की परिस्थतियों से जुड़े हों और विकास की भावनाओं से जुड़े हों इस प्रकार के वैज्ञानिकों की आज हमें ज़रूरत है।

स्त्रियों के संगठन भी इस प्रकार की तकनीकें औरतों तक पहुचाने में मदद दे सकते हैं। स्त्रियों के संगठन एक नेटवर्क बना सके हैं। एक संवाद स्थापित कर चुके हैं। वे गांव की औरतों को टेक्नॉलॉजी की पहचान करवा कर तकनीकें अपनाने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं।

दूसरी ओर फूड प्रोसेसिंग में जानकार लोग विकेन्द्रित पद्धति से, और मौसम आधारित उत्पादनों पर ज़ोर देकर टेक्नॉलॉजी विकसित कर सकते हैं। यह नीति ग्रामीण इलाकों में मददगार होगी।

CFTRI – फूड प्रोसेसिंग और औरतों के लिये संभावनाएं

एस. हरीप्रसाद और पी. एस. बालकृष्णन

मैसूर के केन्द्रीय खाद्य टेक्नॉलॉजी और संशोधन संस्थान (CFTRI) के एस. हरीप्रसाद और पी. एस. बालकृष्णन इस लेख में खाद्य उद्योग के नए वर्गीकरण का सुझाव देते हैं और स्त्रियों की भागीदारी के नए क्षेत्रों के लिये आह्वान करते हैं।

उनका कहना है कि भारत में औरतों की शिक्षा काफी हद तक दूसरे पडोसी राष्ट्रों से ज़्यादा है किंतु वर्तमान परिस्थतियों में काम करनेवाली स्त्रियां केवल 13.99% हैं। बाकी सारी औरतें इस प्रकार की खाद्य योजनाओं में जुड़ जानी चाहिये, उनको काम मिलना चाहिये। स्त्रियां अच्छी उद्यमी बन सकती हैं। अगर उन्हें कुछ ज़रूरी सहायता मिले, जैसे कि टेक्नॉलॉजी के बारे में जानकारी, आर्थिक और प्रशासकीय मदद और बाज़ार की सुविधाएं। टेक्नॉलॉजी से परिचित करवाने के लिए, केन्द्रीय खाद्य टेक्नॉलॉजी और शोध संस्थान, बहुत सारी योजनाओं से सुविधाऐं उपलब्ध करवा देता है। जैसे कि परीक्षण के लिये प्रक्रियाओं और नई योजनाओं के अध्ययन और विश्लेषण की सेवाएं क्षेत्रीय केन्द्रों पर उपलब्ध हैं। इस लेख में सभी खाद्य पदार्थों की सूची दी गई है जो संशोधन और प्रगति के लिए विचाराधीन हैं; 160 खाद्य प्रक्रियाओं के बारें में छोटे और लंबे असत्र का तकनीकी प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इन प्रक्रियाओं का अतिसूक्ष्म तरीके से विभागों में वर्गीकरण किया गया है। फूड प्रोसेसिंग उद्योग एक उभरता उद्योग है जिसकी तुलना उगते सूरज से की गयी है और निर्यात व्यापार में इसके योगदान पर ज़ोर दिया गया है। औरतों के लिये, अत्यव्त उर्वर भूमि इस फूड प्रोसेसिंग उद्योग में उन्हें दिखायी पड़ती है। इसका पूरा फायदा उठाने के लिए महिला उद्यमियों को केन्द्रीय खाद्य टेक्नॉलॉजी और शोध संस्थान और सरकार से मदद लेना चाहिए।

उभरता हुआ फूड प्रोसेसिंग उद्योग: औरतों के लिये संकेत

मैथिली रवि

भारत की 75 प्रतिशत आबादी कृषि उद्योग से जुड़ी है, लेकिन खाद्य उद्योग में उस खेती उत्पादन का 12 प्रतिशत हिस्सा काम आता है। यही परिणाम अमरीका जैसे राष्ट्रों के लिये 64 से 70 प्रतिशत है। खाद्य उद्योग युनिट, कुल उत्पादन युनिट के 19 प्रतिशत हैं और इसमें जुड़े कामगारों की संख्या 17 प्रतिशत है।

मैथिली रवि के इस लेख में फूड प्रोसेसिंग उद्योग के विभिन्न पहलुओं जैसे खेती, खाद्य उद्योग, प्रोसेसिंग, बाजार में मांग, आदि की चर्चा की गई है। प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ मुख्यतः शहरों की मांग हैं। इस उत्पादन की कीमत पर पदार्थों की बिक्री अनुमानित है। कीमत और क्वालिटी का महत्व शहरों के बाज़ार में ज़्यादा है।

उभरता फूड प्रोसेसिंग दो प्रकार के उद्योग में बंटा हुआ दिखायी पड़ता है -- एक निर्यात के लिये और भारतीय उच्च वर्ग के लोगों के लिए, और दूसरा विकेन्द्रित हिस्सा जहां कई सारे खाद्य पदार्थ हैं जो कनिष्ठ वर्ग के लोग, कर्मचारी, इ. के लिये कैंटीन, स्कूल कैंटीन इ. में बेचे जाते हैं और खाद्य पदार्थोंकी विविधता भी क़ाबिले ग़ौर है। साफ धान, काफी दिनों तक रखे जा सकें ऐसे दूध के पदार्थ, प्रोटीन युक्त मिश्रण, इ. पदार्थों का उत्पादन विकेन्द्रीत पद्धति से होता है। महिलाओंका उसमें सहभाग ज़्यादा होता है।

बड़े उद्योगों की तुलना में महिलाओं का इस उद्योग में सहभाग फायदेमंद है। कम वेतन, पोषक आहार, और घर के स्वाद का मज़ा इन विशेषताओं के कारण ही औरतों को अधिक भागीदारी के लिये परिस्थितियों का फायदा उठाना चाहिये।

औरतों की फूड प्रोसेसिंग में भागीदारी विषय पर IDBI द्वारा किये गए अध्ययन के मुताबिक औरतें तीन प्रकार की फूड प्रोसेसिंग प्रक्रिया में हिस्सा लेती हैं। एक खाने के लिये तैयार पदार्थ बनाना, दूसरा आधे पके हुए पदार्थ बनाना और तीसरा फूड प्रोसेसिंग उद्योग की मांग के अनुसार पदार्थों का, मुख्यतः कच्चे माल का, निर्माण। बाजार का सवाल और कीमत में वृद्धि, मार्केट की संरचना के लिये क्या आवश्यक है, इ. विषयोंपर चर्चा करने की भी कोशिश की गयी है।

अन्त में उन्होंने कहा है कि जो भी स्त्री संगठन फूड प्रोसेसिंग उद्योग में हैं, जैसे कि अन्नपूर्णा, ज्योती संघ, इ. सीमित क्षेत्रों में सफल हैं। लेकिन केन्द्रीय स्तर पर इस प्रकार के प्रयोग होने चाहिए। औरतों के संगठन के प्रति एक आवाहन भी किया गया है, कि

महिला संगठनों और फूड प्रोसेसिंग उद्योग से संबंधित महिलाओं को ताकतवर बनाना चाहिये।

और इसके अलावा लेख में पदार्थोंकी कीमत कम करना (महंगाई कम करना), क्वालिटी निर्धारित करना, प्रचार तथा विज्ञापन और वितरण के नए तरीकों, आदि प्रश्नों की चर्चा की गयी है।

खादी ग्रमोद्योग आयोग के अंतर्गत फल और सब्ज़ी प्रोसेसिंग और संरक्षण उद्योग

यू. हरिगोपाल

खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा दिये जानेवाली आर्थिक सहायता और महिलाओं द्वरा इस से उठाए गए फायदे का चित्र हमें इस लेख द्वारा मिलता है।

इस लेख में विश्व उत्पादन में फल और सब्ज़ी के उत्पादन क्रम और प्रतिशत उत्पादन का ज़िक्र किया गया है। भारत में विश्व के कुल उत्पादन का 7.5 प्रतिशत फल और 10 प्रतिशत सब्ज़ी उत्पादन होता है। इन उत्पादनों में विश्व भारत का क्रम तीसरा और दूसरा है। इसके साथ ही कुछ फलों का अधिकांश उत्पादन भारत में होता है। जैसे कि आम का 65 प्रतिशत उत्पादन, केले का 11 प्रतिशत और प्याज का 12 प्रतिशत उत्पादन।

ये उत्पादन भारत की जनसंख्या की तुलना में पूरा नहीं पड़ता। और अधिक उत्पादन की ज़रूरत है ही। इससे आगे श्री हरिगोपाल का कहना है कि फल और सब्ज़ी उद्योग फिर भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि एक तो कुल उत्पादन का बड़ा हिस्सा खराब हो जाता है, और इस का इस्तेमाल करना आवश्यक है, और दूसरा इससे कीमतों पर लगाम लगाई जा सकती है जिससे उत्पादकों का ही फायदा है।

उत्पादन के ही स्थान पर उद्योग खड़ा होने से स्थानीय मज़दूरों को काम मिलता है और यातायात में होने वाली वस्तुओं की खराबी का खतरा टलता है। यही तरीका खादी ग्रामोद्योग आयोग ने अपनाया है।

छोटे उद्योग, कुटीर उद्योग शुरू करना उनका काम रहा है। इस उद्योग को बढ़ावा देने के लिये कर्ज़, मदद, इ. आयोग देता है।

महिलाओं के लिये काम ये खास उद्देश्य है और कुछ काम सिर्फ महिलाओं के लिये चुने गए हैं। काजू उद्योग में करीबन 50% महिलाएं काम करती हैं। देशभर में केवल 14 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं पर आयोग में लगभग 46% हिस्सा लेती हैं।

स्त्रियों का आहार व फूड प्रोसेसिंग: जनता का हस्तक्षेप

एन. वी. मेरी

एक महत्व का मुद्दा एन. वी. मेरी ने यहां मोटे रूप से उठाया है कि जनता का स्थान उद्योग में क्या हो सकता है, फूड प्रोसेसिंग पद्धति और उसकी योजनाओं के उद्देश्य क्या होने चाहिए। मुख्यतः औरतें ही फूड प्रोसेसिंग का काम सदियों से करती आई हैं। और उस विरासती काम से किसी भी समाज की पोषण की स्थिति ज़ाहिर होती है। फूड प्रोसेसिंग से जुड़े नए उघोगों से, गांव के लोगों का और विशेष रुप से औरतों का पोषण बढ़ना आवश्यक है।

इस दिशा में ज़्यादा कुछ शोध नही हुआ है। लेकिन जो भी शोध हुआ है उससे ज़ाहिर है कि गांव परिवार के सभी सदस्यों को पूरा आहार नहीं मिलता है। शहरी और गांव की औरतों में कुपोषण दिखाई देता है। इससे साफ है कि औरतों को पूरा खाना नहीं मिलता। पुरानी रुढ़ियों के कारण ऐसा होता होगा। ॲनिमीया जैसी स्थिती 30 से 40% औरतों के प्रजनन काल आयु में होती है।

इस पृष्ठभूमि पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि औरतों को पर्याप्त खाना मिलने के लिए किस प्रकार के बदलाव किए जाएंगे और किस तरह की नीति अपनाई जाएगी। इस दिशा में केरल में उपजने वाले जो फल ज़्यादातर खराब होने और उपयोग न होने के कारण फिज़ूल जाते हैं, उन का उन्होंने अध्ययन किया है।

केरल में काजू, सेब, कटहल, अनानास, आम और पपीता ये सभी फल स्थानिय स्तर पर उपलब्ध हैं जिनका उपयोग मध्यमवर्गीय और कम आमदनीवाले वर्ग कर सकते हैं। लेकिन जिस देश में लोग भूख से मरते हैं उसी देश में 50% फल तथा खाद्य पदार्थ बेकार पड़े से सड़ जाते है।

औरतों की भागीदारी स्थानीय फूड प्रोसेसिंग केन्द्र में ज़्यादा होने की वजह है, कम मज़दूरी और अविकसित तकनीकें जिनके कारण उद्योग का स्तर नीचा है।

केरल में फूड प्रोसेसिंग और आहार केन्द्र की स्थापना 1983-84 में की गई। खाद्य विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा पंचवर्षीय योजना के तहत उनके मुख्य काम हैं:

1) प्रोसेसिंग के लिए तकनीकी प्रशिक्षण;

2) प्रोसेसिंग के लिए ज़रूरी सुविधा उपलब्ध करवाना;

3) खेती से उत्पादित खाद्य पदार्थों के प्रोसेसिंग के लिए उपयुक्त पद्धती का निर्माण;

4) आबादी के आहार और स्वास्थ्य के लिए योग्य योजना बनाना.

पिछले पांच साल में फूड प्रोसेसिंग और आहार केन्द्र ने अच्छा काम किया है। इस सफलता को एक साधारण पृष्ठभूमि में ही देखना चाहिए। औरतों की प्रगति के लिए इस्तेमाल हो सकने वाले मॉडल के रूप में नहीं। क्योंकि यह अभी प्रयोग के स्तर पर ही चल रहे हैं।

कार्यशाला के सुझाव:

1. स्त्रियां परंपरागत रूप से भारत में फूड प्रोसेसिंग उद्योग से जुड़ी हैं। लेकिन इसके बावजूद इस उद्योग से संबंधित नीतियां निर्धारित करने में उनका कोई योगदान नहीं रहा है। इसीलिए इस कार्यशाला के दौरान यह सुझाव दिया गया कि फूड प्रोसेसिंग उद्योग की नीतियां तय करने वाली समितियों में 50% प्रतिनिधित्व, फूड प्रोसेसिंग उद्योग में सक्रिय महिला संगठनाओं की महिलाओं का हो।

2. फूड प्रोसेसिंग का अधिकतम काम भारत में औरतों द्वारा कुटीर और लघु उद्योग के तहत ही होता है। इसीलिए इस बात पर ज़ोर दिया गया कि श्रम शक्ति रिपोर्ट में दिए गए सुझावों को लागू किया जाए।

3. खुले आम बड़ी कंपनियों को फूड प्रोसेसिंग उद्योग में अपने बड़े कारखानों सहित आने देने की नीति से जुड़े कई सवाल और चिंता के मुख्य कारण हैं:

a) चूंकि ये कारखाने वही चीज़ें बनाते हैं जो औरतें असंगठित क्षेत्रों में व अपने घरों पर बनाती हैं, इनके बीच होने वाली होड़ से कई औरतों की रोज़ी छिन जाएगी और उनके परिवारों को और गरीबी का सामना करना होगा।

b) कई नए तरीकों से खाने में पौष्टिक तत्व कम हो जाते हैं।

c) विज्ञापनों के जरिये ये कंपनिया अपना माल बेचती हैं। हर किस्म के खाने को पौष्टिक या मज़ेदार करार किया जाता है। कार्यशाला में सभी को यह बहुत ज़रूरी लगा कि विज्ञापनों को नियंत्रित करने के लिए खास नियम बना कर, उन्हें लागू किया जाए।

d) फूड प्रोसेसिंग उद्योग में भी किस स्तर की टेक्नॉलॉजी चल सकती है इस पर पाबंदी होनी चाहिए। घरों पर होनेवाले और लघु उद्योग उत्पादन को बरकरार रख, उन्हें खास सहूलियतें देनी चाहिए।

4. यह बड़ी शर्म की बात है कि आज फूड प्रोसेसिंग उद्योग के संगठित क्षेत्र में निजि और सरकारी दोनों ही किस्म के कारखानों में महिला मज़दूर नहीं के बराबर हैं। चूंकि इस काम से औरतें हमेशा जुड़ी रही हैं, इन कारखानों में भी 50% नौकरियां औरतों के लिए आरक्षित होनी चाहिए।

5. औरतों को खास प्रशिक्षण और बेहतर तज़ुर्बा दे कर उन्हें इन उघोगों में प्रबंधक पदों पर काम करने के लिए सक्षम बनाया जाए।

6. प्रोसेस्ड खाद्य सामग्री की गुणवत्ता पर नियंत्रण भी एक समस्या है। प्रोसेसिंग की प्रक्रिया के दौरान क्या और कैसे रसायन डाले जाते हैं इस पर कड़ा नियंत्रण होना चाहिए। साथ ही लेबल पर यह अंकित करना ज़रूरी है कि किस तरह के रसायन कितनी मात्रा में डाले गए हैं।

7. इस बात पर कार्यशाला में ग़ौर किया गया कि देश के संस्थानों में विकसित टेक्नॉलॉजी को नज़रअंदाज़ किया जा रहा है। नीति निर्धारण में या नई टेक्नॉलॉजी का आयात करते समय, भारतीय वैज्ञानिकों से सलाह नहीं ली जाती। उद्योग में यहां के अग्रणी संस्थानों के वैज्ञानिकों को भी जोड़ना चाहिए।

8. कम लागत वाली और औरतें कर सकें ऐसी तकनीकें जैसे धूप से जुड़ी या अन्य, को विकसित करना ज़रुरी है ताकि ग्रामीण रोज़गार भी बढ़ सके। इनके लिए सरकार द्वारा कर्ज़ और बिक्री की मदद देनी ज़रूरी है। इनसे गरीब वर्ग के लोगों को खाना भी प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के तौर पर, धूप में सुखाई गई सब्ज़ियों को राशन की दुकान से बेचना।

9. राशन में वितरित अनाज बहुत हल्के दर्ज़े का होता है। इससे स्वास्थ्य और पोषण संबंधी कई सवाल पैदा होते हैं। राशन की दुकानों से अच्छा पौष्टिक अनाज वितरित किया जाना चाहिए।

10. बायोटेक्नॉलॉजी के कई आयामों का कार्यशाला में घोर विरोध किया गया। जैसे कि जिनेटिक तकनीक से बनाए गए बीजों का, जिनके स्वास्थ्य पर दूरगामी प्रभाव पता भी नहीं हैं।

11. बडे पैमाने पर फूड प्रोसेसिंग कारखाने डलने पर कृषि उद्योग और ठेके पर होने वाली कृषि के जरिये इसका असर कृषि उत्पादन पर होता है। मोनोकल्चर खेती से विश्व भर में विनाश हुआ है। कार्यशाला के सहभागियों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि फूड प्रोसेसिंग केवल अतिरिक्त या बरबाद होने वाले अनाज पर ही होना चाहिए। इसके लिए कृषि प्रणालियों में बदलाव नहीं किए जाने चाहिए।

12. खाद्य पदार्थों में डाले जा रहे रसायनों का भी सहभागियों ने विरोध किया क्योंकि इसके बाद उपभोक्ता के सामने कोई विकल्प नहीं रह जाता । अनिवार्य नमक आयोडीकरण कार्यक्रम तुरंत बंद होना चाहिए और विकिरितखाना भी।

13. आखिरकार, यह सुझाया गया कि एक ऐसी स्वतंत्र संस्था का गठन किया जाए, जो फूड प्रोसेसिंग और ग्राहकों की ज़रूरतों पर स्वतंत्र रूप से शोध व अध्ययन करे।

डॉ दिव्या पांडे

डॉ दिव्या पांडे रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज़, एस्. एन्. डी. टी. में रीडर हैं। सेंटर से छपनेवाली त्रिमासिक पत्रिका की पिछले आठ वर्षों से वे संपादिका हैं। डेमोग्राफी और विमेन्स स्टडीज़ से जुडे सेंटर के कई शोध प्रकल्पों में वे सक्रीय रहीं हैं। उन्होंने इस विषय पर कई लेख और रिपोर्ट लिखे हैं व 'स्टडीज़ ऑन विमेन एन्ट पोप्युलेशन -- अ क्रिटीक', इस पुस्तिका की सहलेखिका हैं।

डॉ मीरा सवारा

डॉ मीरा सवारा एक स्वतंत्र शोध कन्सल्टन्ट हैं और 'शक्ति' नामक औरतों के एक रिसोर्स केन्द्र की संचालिका हैं। विकास और महिलाओं से संबंधित कई मुद्दों पर उन्होंने काम किया है जिसमें से एक अध्ययन 'महिलाएं और फूड प्रोसेसिंग' पर भी है। हाल ही में 'महिलाएं और अनौपचारिक क्षेत्र के संगठन: बंबई में पांच क्षेत्रों का अध्ययन' उन्होंने जना एवरेट के साथ पूरा किया है।

खेत में पकने वाली फसल से थाली परोसे गए भोजन तक का एक लंबा सफर है। इस सफर के दौरान की जाने वाली सभी प्रक्रियाएं आती हैं फूड प्रोसेसिंग के तहत। और इससे सदियों से जुड़ी हैं औरतें। परंतु आज के आधुनिक समय में इसका एक नया दौर चल रहा है जिसका असर हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर पड़ रहा है।

फूड प्रोसेसिंग की नई नीतियां, और उन पर शहरी अध्ययनकर्त्ताओं के नज़रिये पर चर्चा के लिए एक कार्यशाला का आयोजन 1990 में रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज़, एस. एन. डी. टी. बंबई, द्वारा किया गया। कार्यशाला में पढ़े गए लेख अंग्रेज़ी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किए गए। लेखों और चर्चा के दरमियान उठाए गए मुख्य मुद्दों को इस हिंदी पुस्तिका में संकलित किया गया है।

इस उद्योग से जुड़ी औरतों और औरतों के संगठनों तक यह जानकारी पहुंचाने का यह एक प्रयास है। आशा है की यह पुस्तिका फूड प्रोसेसिंग के विभिन्न पहलूओं का समावेश करता हुआ एक नज़रिया विकसित करने में मददकारक होगी।

प्रिय साथियों,

इस पुस्तिका को देख आपको आश्चर्य होगा। यह सवाल भी उठेंगे कि यह किसने भेजी है और क्यों ?

यह है रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज, एस.एन.डी.टी. की ओर से किया गया अनूठा प्रयोग। जब कार्यशालाएं होती हैं, तब या तो किताब निकलती है, या उस कार्यशाला के कार्यपर आधारित एक सोविनिर निकलता है, या उस कार्यशाला में हुई चर्चा व लेख किसी जर्नल में छपवाए जाते हैं। लेकिन जिन व्यक्तिओंकी रोजमर्रा ज़िन्दगी पर आधारित इस कार्यशाला का आयोजन किया जाता है, उन स्त्रियों तक, उन व्यक्तिओं तक पहुंचना आवश्यक मानकर भी यह कर पाने में बहुत सारी कठिनाइयां पेश आती हैं।

इन सभी कठिनाईयोंका सामना जब हो पाना है तब बनती है इस प्रकार की पुस्तिका जो आप के हाथ में है। आशा है आप उसे पढकर अपनी राय और इस विषय पर अपने विचारों की जानकारी हमें देंगे। इसके साथ ही, इस तरह एक प्रक्रिया को और पुख़्ता बनाने में भी आप शामिल हों यह हमारी इच्छा है।

आपके खत, राय, किताब पहुँचनेकी सूचना आदि इस पते पर लिखिएगा।

दिव्या पांडे
एस. एन. डी. टी.
रिसर्च सेल फॉर विमेन्स स्टडीज़
जुहू कँपस
जुहू, बंबई - 49
400 049

With Best Compliments

RESEARCH CENTRE FOR WOMEN'S STUDIES
S. N. D. T. WOMEN'S UNIVERSITY
Vithaldas Vidyavihar, Santacruz [West],
BOMBAY-400 049.